ज्ञानपीठ'-लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी-ग्रंथांक ३४

द्विवेदी-पत्रावली

श्री बैजनाथसिंह विनोद

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक

लक्ष्मीचन्द्र जैन एम. ए.

प्रकाशक

अयोध्याप्रसाद गोयलीय,

मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ

दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण

१९५४

मूल्य ४.००

मुद्रक

पं० प्यारेलाल भार्गव

राजा प्रिंटिंग प्रेस,

कमच्छा, बनारस





विषय-सूची

आमुख

द्विवेदी-पत्रावलीके सम्बन्धमें दो-चार शब्द लिखनेमें मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है। मैं समझता हूँ कि ऐसा करके आधुनिक हिन्दीके निर्माताओं में से एक प्रमुख साहित्यकारके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट कर सकूँगा।

वास्तवमें पत्रलेखन एक कला है, यद्यपि प्रत्येक व्यक्तिके पत्र कलाकी ऊँचाईको नहीं छू पाते। किसी पत्रका सौष्ठव और महत्त्व लेखकके व्यक्तित्व पर अवलम्बित है। लेखकका प्रयोजन रुचि और योग्यता आदि तत्त्व ही किसी पत्रको कलाकी वस्तु बनाकर सुरक्षित रख सकते हैं अथवा उसे रद्दी की टोकरीमें डाल सकते हैं। साहित्यकार तथा कलाकारके पत्र भी उनकी अन्य कलात्मक कृतियोंकी तरह कलाके नमूने होते हैं। यह सच है कि किसी ग्रन्थके प्रणयन अथवा मूर्तिके निर्माणमें साहित्यकार अथवा कलाकार समाजको अपने ध्यानमें रखता है और पत्र लिखनेमें किसी व्यक्ति-विशेष को। परन्तु पत्रकी अपील कुछ क्षणके लिए व्यक्तिगत होते हुए भी उसका मूल स्रोत लेखकके कलात्मक व्यक्तित्वमें होता है। अतः वह पत्र किसी भी पाठकके हृदयमें रसका उद्रेक कर सकता है। स्व० द्विवेदीजी इसी प्रकार के साहित्यकार थे। अतः उनके पत्र भी साहित्यिक और सामाजिक महत्त्वके हैं। उनके पत्र प्रायः समसामयिक कवियों और साहित्यकारोंको लिखे गये हैं। इसलिए उनका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। कुछ व्यक्तिगत प्रसंगों को छोड़कर द्विवेदीजीके पत्र किसी न किसी भाषासम्बन्धी प्रश्न अथवा साहित्यिक समस्यापर लिखे गये हैं। फलतः आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्यके विकास पर इन पत्रोंसे काफ़ी प्रकाश पड़ता है।

स्व० द्विवेदीजीके साहित्यिक जीवनका अधिकांश 'सरस्वती'के सम्पादन में बीता। प्रायः इसी पदसे वे पत्र-व्यवहार भी करते थे, यद्यपि अन्य साहित्यकारोंसे व्यक्तिगत परिचयके कारण कुछ व्यक्तिगत प्रसंग भी आ जाते थे। अपने पत्रोंमें भी द्विवेदीजी सम्पादकके रूपमें ही दिखायी पड़ते हैं। उनके पत्रोंके अधिकांश वे ही विषय थे जो उस समय हिन्दीकी समस्याएँ, अर्थात् प्रादेशिक भाषाओंके स्थान पर सार्वदेशिक हिन्दीके निर्माणका प्रश्न, खड़ी बोलीको गद्य और पद्य दोनोंमें साहित्यका माध्यम बनानेका प्रश्न, संस्कृतनिष्ठ और सुबोध हिन्दीका प्रश्न, हिन्दीके व्याकरण और शब्द-विन्यासका प्रश्न, हिन्दी-साहित्यमें विषयोंके चुनाव और सुरुचिका प्रश्न, हिन्दीमें स्वस्थ तथा निर्भीक पत्रकारिताका प्रश्न, हिन्दी साहित्यको लोक-मंगलका वाहक बनानेका प्रश्न आदि। संक्षेप और स्फुट रूपसे द्विवेदीजीके पत्रोंमें ये सभी विषय आलोकित होते हैं। वे जागरूक शिल्पीके समान अपने ज्ञान, तर्क तथा रुचिसे हिन्दी भाषा और साहित्यका संस्कार करते हुए दिखायी पड़ते हैं।

पत्रोंमें द्विवेदीजीके साहित्यिक रूपके साथ-साथ उनके व्यक्तिगत जीवनकी भी झाँकी मिलती है। दृढ़ निश्चय और लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए सतत प्रयत्न उनके जीवनकी आधार-शिला थी। संसारका कोई प्रलोभन अथवा कठिनाई उनको पथभ्रष्ट नहीं कर सकती थी। सादगी और ग़रीबी उनके जीवनका संबल था। मितव्ययिता और त्याग तथा निर्भीकता और स्पष्टवादिताके साथ शिष्टाचार और सौजन्यका उनमें अद्भुत समन्वय था। प्राचीनताके प्रति आदरके साथ नवीनका स्वागत करनेकी उनमें विलक्षण क्षमता थी। पत्रोंके छोटे-छोटे प्रसंगोंमें ये बातें स्पष्ट रूपसे झलकती हैं।

आजतक द्विवेदीजीके पत्रोंका संग्रह उपलब्ध नहीं था। खेदका विषय है कि अभी तक हिन्दी साहित्यमें विशिष्ट साहित्यकारोंके पत्र-संग्रह

प्रकाशित करनेकी ओर ध्यान नहीं गया है। श्री 'विनोद' जीने इन पत्रोंका सम्पादन कर हिन्दीमें एक बड़े अभावकी पूर्ति की है। यह संग्रह अपने ढंगका प्रथम ही है। आशा है द्विवेदीजीके अन्य पत्रोंका प्रकाशन वे शीघ्र करा सकेंगे। स्व० द्विवेदीजीके जीवन-चरित्रको जोड़कर श्री विनोद जीने एक प्रकारसे पत्रोंकी भूमिका लिख दी है। द्विवेदीजीके गुणोंके प्रति जो उनकी आत्मीयता और सहानुभूति है शायद वही उनकी मूल प्रेरणा है।

इस प्रकाशनके लिए श्री विनोदजी तथा उसके प्रकाशक ज्ञानपीठ दोनों ही साधुवादके पात्र हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वैशाख प्रतिपद, वि० सं० २०११

राजबली पाण्डेय

निवेदन

कभी-कभी बेकारीकी हालतमें भी आदमी अच्छा काम कर जाता है। इतिहासमें तो ऐसे अनेक उदाहरण हैं ही। प्रस्तुत पुस्तक 'द्विवेदी-पत्रावली' भी इसीका प्रमाण है।

कुछ समयसे 'जनपद'का काम शिथिल पड़ जानेसे मैं एक प्रकारसे बेकार-सा था। सौभाग्यसे मेरे मित्र प्रियवर श्री राय आनन्दकृष्णजीको कुछ सूझा और उन्होंने एक दिन मुझसे कहा—'विनोद' जी आप स्व० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीके चुने हुए पत्रोंका संकलन कर दें। आपको सभीका सहयोग मिल जायगा। इससे आप हिन्दी साहित्यका एक बड़ा उपकार करेंगे। मुझे भी यह काम जँचा। इसी बीच एक दिन श्री अयोध्याप्रसादजी गोयलीयसे मिलनेका अवसर मिला। संयोगसे उस समय भी श्री राय आनन्दकृष्णजी साथ थे। गोयलीयजी तो साक्षात् उर्दू साहित्य हैं। उर्दू-साहित्यकी चर्चा करते समय वे थकते ही नहीं। घंटों साहित्य-चर्चा होती रही। इसी समय गोयलीयजीने उर्दूके साहित्यकारोंकी चर्चा की। मौलवी महेशप्रसादजीने 'खतूते-ग़ालिब' का सम्पादन कर दिया। और भी अनेक उर्दू-साहित्यकारोंके पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। मौक़ा हाथ आ गया था। आनन्दकृष्ण भला कब चूकते! उन्होंने झट कहा—विनोदजीने स्व० आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदीके कुछ चुने हुए पत्रोंका संग्रह कर लिया है। आप यदि प्रकाशित करना चाहें, तो यह काम पूरा हो सकता है।' गोयलीयजी तो चाहते ही थे।

'द्विवेदी-पत्रावली' की यही मूल प्रेरणा है।

× × ×

द्विवेदीजीके पत्रोंके संग्रहमें लग गया। इस काममें सबसे पहले

श्रद्धेय राय कृष्णदासजीकी सहायता मिली। 'भारत कला-भवन' में द्विवेदीजीके पत्रोंका जो संग्रह था, उसे देखने और उसमेंसे कुछ चुने हुए पत्रोंकी प्रतिलिपि करनेकी अनुमति मुझे राय साहबने दे दी। 'भारत कला-भवन'से द्विवेदीजीके चुने हुए पत्रोंका संग्रह कर लेनेके बाद मैंने नागरी-प्रचारिणी सभा काशीके संग्रहालयमें सुरक्षित द्विवेदीजीके कागज़-पत्रोंको एक-एक कर देखा। उक्त संग्रहमें कुछ ऐसे पत्र भी मिले, जिनकी पीठ पर अथवा अलग स्लिपों पर भी द्विवेदीजीने अपने कुछ पत्रोंकी स्वयं प्रतिलिपि कर दी है। कुछ विवादास्पद मसौदे भी मिले। ऐसे उन्नीस पत्र सभाके महावीरप्रसाद द्विवेदी-संग्रहमें मिले। उनकी प्रतिलिपि भी मैंने ले ली। पर अनेक कारणोंसे उनका प्रकाशन उचित न जान पड़ा। अतः उन पत्रोंको इस संग्रहमें नहीं दिया जा रहा है।

प्रयागसे द्विवेदीजीके पत्रोंके संग्रहमें बन्धुवर डॉ० उदयनारायण तिवारीजीने बड़ी सहायता की। तिवारीजीकी कृपासे ही मुझे लल्लीप्रसाद पाण्डेयका सहयोग मिल सका। लल्लीप्रसाद पाण्डेय स्व० आचार्य महावीर प्रसादजी द्विवेदीके निकटके सहकर्मी थे। उनके पास द्विवेदीजीके बहुत महत्त्वपूर्ण पत्र हैं। इनका उल्लेख तक कहीं नहीं हुआ था। वे सभी पत्र मुझे मिल गये। मैंने सबको पढ़कर कुछ पत्र चुन लिये। यही नहीं, पाण्डेयजीने और भी पत्रोंको प्राप्त करनेमें मेरी सहायता की। पं० देवीदत्त शुक्लजीसे भी मैं प्रयागमें मिला। अब उनकी आँखें नहीं रहीं। पर उनकी स्मृतिमें द्विवेदीजीसे संबंधित अनेक घटनाएँ हैं, जिन्हें सुनाते-सुनाते उनका हृदय भर जाता था। शुक्लजीने अपने पत्रोंका संग्रह सम्मेलनको दे दिया है। पं० रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री, सहायक मन्त्री हिन्दी साहित्य सम्मेलनने भी कृपा करके सम्मेलनके संग्रहालयमें सुरक्षित द्विवेदीजीके सभी पत्रोंको मेरे निकट सुलभ कर दिया। पं० ब्रजमोहन व्यासजीने स्व० श्रीधर पाठकजीको लिखे गये द्विवेदीजीके पत्रोंको देकर मेरी बड़ी सहायता की।

श्री मुरारीलाल केडिया (काशी) के पास भी अपना एक छोटा-सा संग्रहालय है। उन्होंने अनेक वस्तुएँ जुटा भी ली हैं। श्री केडियाजीने भी मेरी सहायता की। पर केडियाजीके संग्रहमें सुरक्षित द्विवेदीजीके अनेक पोस्टकार्डोंमें कैंची लग गई है। किसी बुद्धिमान्ने टिकट-संग्रहके लोभसे पोस्टकार्डोंके स्टाम्पको कैंचीसे काट लिया है। स्टाम्पोंकी पीठ पर प्रायः पत्र लिखनेकी तिथि थी। फलतः स्टाम्पोंके साथ ही पत्र लिखनेकी तिथि भी ग़ायब है। द्विवेदीजी-द्वारा पं० केशवप्रसाद मिश्रजीको लिखे गये कुछ महत्त्वपूर्ण पोस्टकार्डोंकी तिथि ग़ायब है। ऐसे पत्रोंको मैंने छोड़ दिया।

श्री राय कृष्णदासजी तथा कुछ और महानुभावोंकी कृपासे मुझे स्व० आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजीके ११६७ पत्र देखनेको मिले। प्राप्त पत्रोंमें ७२ प्रकाशित हैं; शेष सभी अप्रकाशित। इन सभी पत्रोंको पढ़कर और उनमें-से कुछको चुनकर मैंने प्रस्तुत 'द्विवेदी-पत्रावली'का संकलन किया है।

जिन व्यक्तियोंके पत्र मुझे मिल सके, वे तो प्रस्तुत संग्रहमें सुरक्षित ही हैं। पर इनके अलावा कुछ और व्यक्तियोंके पास भी द्विवेदीजीके पत्र होने चाहिएँ। मुझे मालूम हुआ कि स्व० बा० शिवप्रसादजी गुप्तके साथ भी द्विवेदीजीका पत्र-व्यवहार हुआ था जिसमें सम्भवतः गुप्तजी-द्वारा द्विवेदीजीको सहायता मिलनेकी बातें भी होंगी। किन्तु यह ज्ञात न हो सका कि वे पत्र अब कहाँसे उपलब्ध हो सकेंगे। इनके अलावा पं० कृष्णदत्त वाजपेयी (मथुरा), पं० रामचन्द्र शुक्ल एम० ए०, पं० पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, पं० गिरजा प्रसाद द्विवेदी (जयपुर) के पास भी कुछ पत्र होंगे। पं० बनारसीदास चतुर्वेदीजीके पास भी कुछ पत्रोंका संकलन होगा। पं० श्रीराम शर्माके पास, पं० गिरजाप्रसाद वाजपेयीके वंशजोंके पास, श्री सुरेश सिंहजीके पास, रायगढ़के राजाके पास और श्री कालिदासजी कपूरके पास कुछ पत्रोंका संकलन होगा। निश्चय इन पत्रोंमें कुछ महत्त्वपूर्ण पत्र भी होंगे।

यदि इन सभी महानुभावोंके पत्रोंको पढ़कर, उन पत्रोंमें से कुछ पत्र चुननेका मुझे अवसर मिलता, तो निश्चय ही यह संग्रह और भी बड़ा होता। फिर यह संग्रह अपने आपमें पूर्ण भी होता। मैंने कुछ लोगोंके पास सुरक्षित पत्रोंको पानेका प्रयत्न भी किया। पर मुझे एक ऐसे व्यक्तिने निराश कर दिया, जिनके द्वारा मैं अनेक व्यक्तियोंके पास सुरक्षित पत्रोंकी प्रतिलिपि पानेकी आशा करता था। वे व्यक्ति बड़े हैं, बुजुर्ग हैं, संग्रही हैं अनेक व्यक्तियोंसे सम्बद्ध हैं और मेरे हितचिन्तक भी हैं। उन्होंने मुझे लिखा कि वे स्वयं द्विवेदीजीके पत्रोंको प्रकाशित करेंगे। यदि वे सभी व्यक्तियोंके पास सुरक्षित पत्रोंको प्रकाशित कर देंगे, तो निश्चय ही हिन्दीका बड़ा उपकार होगा। पर जबतक वे स्वयं द्विवेदीजीके पत्रोंको प्रकाशित न कर दें, तबतक भी हिन्दी-प्रेमी जनताको द्विवेदीजीके पत्रोंका रस मिलता रहे, लोग द्विवेदीजीके कार्यों और उनकी परिस्थितियोंसे भी परिचित होते रहें, इसलिए यह 'द्विवेदी-पत्रावली' प्रस्तुत है।

× × ×

बंगला, गुजराती, मराठी और उर्दू भाषामें साहित्यकारोंके पत्रोंके अनेक प्रकाशन हैं। पर हिन्दीमें वैसी स्थिति नहीं है। जहाँ तक मुझे मालूम है हिन्दीमें शरतबाबूके पत्रोंका अनुवाद श्रीनाथूराम प्रेमीने प्रकाशित कराया है। सुना है स्व० स्वामी दयानन्दजीके पत्रोंका संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है। बापूके पत्र मीरा बहनके नाम भी प्रकाशित हैं। पर अभी तक हिन्दीके एक भी साहित्यकारके पत्र पुस्तक रूपमें नहीं प्रकाशित हुए।

प्रस्तुत 'द्विवेदी-पत्रावली' हिन्दीका प्रथम पत्र-साहित्य है। कालकी दृष्टिसे यह पूर्ण है। जिस समय स्व० आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी जगत्में आये और जबतक वे कुछ करने लायक थे, तबतकके उनके चुने हुए पत्रोंका संकलन प्रस्तुत संग्रहमें है। विषयकी दृष्टिसे भी यह संकलन पूर्ण है। द्विवेदीजीकी सम्पूर्ण साहित्यिक प्रवृत्तियोंसे सम्बन्धित कुछ न

कुछ पत्र इस संग्रहमें हैं। इस तरह द्विवेदीजीके काल और उनके सम्पूर्ण साहित्यिक प्रवृत्तियोंका प्रतिनिधित्व उनके प्रस्तुत पत्रोंमें है। यही नहीं, द्विवेदीजीके पत्रोंका चुनाव करते समय, द्विवेदीजीकी परिस्थिति, प्रवृत्ति और उनके व्यक्तित्वका भी बराबर ध्यान रखा गया है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत 'द्विवेदी-पत्रावली' द्विवेदी युग और द्विवेदीजीके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें प्रामाणिक रिकार्ड है। यह मैं नहीं कहता कि इसमें सभी रिकार्ड मौजूद हैं, क्योंकि कुछ पत्र मुझे नहीं मिले। पर इतना कहा जा सकता है कि जितना है, वह पूर्णका प्रतिनिधित्व करता है। मैंने अपनी ओरसे ऐसा ही प्रयत्न भी किया है, किन्तु यह मैं कैसे कहूँ कि मेरा प्रयत्न निर्दोष है—इसमें कुछ कमी नहीं है। कमी है और कुछ कमी का उल्लेख भी मैं कर चुका हूँ। उनके अलावा भी यदि कुछ कमी रह गई हो, तो विद्वान् आलोचक उसकी ओर ध्यान खींचकर हिन्दीका उपकार करेंगे।

× × ×

प्रस्तुत ग्रन्थ 'द्विवेदी-पत्रावली'के सम्पादन तथा द्विवेदीजीकी संक्षिप्त जीवनीके लिखनेमें डा० उदयभानुसिंहजी पी० एच-डी० के निबन्ध—महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग—से बहुत सहायता ली गई है। इसके लिए लेखक डॉ० उदयभानुसिंहजीके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना धर्म समझता है।

बन्धुवर श्री लक्ष्मीचन्द्रजीने अपने सत्परामर्श-द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थको कंटकरहित बनानेका प्रयत्न किया है। इसलिए उनके प्रति भी लेखक कृतज्ञ है।

काशी
१७—४—५४ } बैजनाथसिंह विनोद

आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

[संक्षिप्त जीवनी]

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीके पितामह पं० हनुमन्त द्विवेदी संस्कृतके अच्छे पण्डित थे। उनके तीन पुत्र थे—दुर्गाप्रसाद, रामसहाय और रामजन। पं० हनुमन्त द्विवेदीकी मृत्यु असमयमें ही हो गई। इस कारण उनके पुत्रोंकी शिक्षा न हो सकी। सबसे छोटे बालक रामजनकी भी मृत्यु हो गई। दुर्गाप्रसादने बैसवाड़ेमें ही गौराके तालुकेदारके यहाँ नौकरी कर ली और रामसहाय ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी सेना में भर्ती हो गये।

अंग्रेज़ोंकी प्रसार-नीतिके कारण देशके छोटे-छोटे राजाओंमें असन्तोष था। असन्तोषने षड़यन्त्रका रूप धारण किया। अंग्रेज़ी सेनामें विद्रोहकी आग धधकी। १८५७ का समय था। कम्पनीकी जिस सेनामें रामसहाय थे, वह होशियारपुर (पंजाब) में थी। विद्रोहकी चिनगारी वहाँ भी पहुँची। विद्रोह जब फैलता है तो संक्रामक रूपमें फैलता है। देखते-देखते उसने होशियारपुरके भारतीय सैनिकोंको अपनेमें समेट लिया। पर अंग्रेज़ बहुत सावधान थे। उन्होंने ताड़ लिया कि सिपाहियोंके मनमें क्या है! और समय रहते ही विद्रोहको कुचलकर धर दिया। हिन्दुस्तानी फ़ौजमें भगदड़ मच गई। भागनेवालोंमें रामसहाय भी थे। उन्होंने देखा कि आगे सतलजकी उमड़ती धारा है और पीछे तोप। दोनों ही ओर मृत्यु है। किन्तु साहस करके, मृत्युसे बचनेके प्रयत्नमें सतलजसे तो बचा भी जा सकता है; पर रुकनेसे तोप द्वारा कायरतापूर्ण मृत्यु निश्चित है। अतः वह सतलज

की वेगवती धारामें कूद पड़े। मृत्युके निकट भी साहसीका सम्मान होता है। सतलजके वेगने सैनिक रामसहाय द्विवेदीकी अच्छी तरह परीक्षा करके—अपनी लहरों द्वारा तोड़-मरोड़कर—उस पार फेंक दिया। माँगते-खाते रामसहाय अपने घर दौलतपुर, ज़िला रायबरेली (उत्तर प्रदेश) पहुँचे।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीका जन्म सिपाही-विद्रोहसे सात वर्ष बाद वैशाख शुक्ल ४ संवत् १९२१ को दौलतपुरमें हुआ। उनके पिता रामसहाय हनुमानजीके भक्त थे। इसलिए उन्होंने बालकका नाम रखा महावीरसहाय।

रामसहाय द्विवेदी बम्बईमें नौकरी करते थे। इसलिए बालककी शिक्षाकी व्यवस्थाकी देखरेखका भार दुर्गाप्रसाद पर पड़ा। चचाकी देख-रेखमें बालकने 'शीघ्रबोध', 'दुर्गासप्तशती', 'विष्णुसहस्रनाम', 'मुहूर्त्त-चिन्तामणि' और 'अमरकोश' को कंठ कर लिया। इस प्रकार संस्कृत भाषा से महावीरप्रसाद द्विवेदीकी शिक्षाका प्रारम्भ हुआ। संस्कृतके इस प्रारम्भिक ज्ञानके बाद बालकको गाँवकी पाठशालामें भर्ती कराया गया। वहाँ उन्हें हिन्दी, उर्दू और गणितकी प्रारम्भिक शिक्षा मिली। कुछ फ़ारसीका भी अभ्यास कराया गया। इतनेमें ग्राम-पाठशालाकी प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त हो गई। किन्तु उनके परिवारके लोग समयकी गतिको समझते थे। वह जानते थे कि अंग्रेज़ी राज्यमें बिना अंग्रेज़ीके किसी भी व्यक्तिका पूर्ण विकास सम्भव ही नहीं है। अतः महावीरसहायको अंग्रेज़ी शिक्षाके लिए हाईस्कूलमें भर्ती करानेका निश्चय किया गया। इसके लिए गाँवके स्कूलसे प्रमाण-पत्रकी ज़रूरत थी। प्रमाण-पत्र लिखते समय अध्यापकने भूलसे महावीरसहायकी जगह महावीरप्रसाद लिख दिया। इसी नामसे १३ वर्षकी उम्रमें अपने गाँवसे ३६ मील दूर बरेली ज़िला-स्कूलमें द्विवेदीजी भर्ती हुए और आगे उनका यही नाम हो गया। उनके

गाँवसे रायबरेली बहुत दूर था। इसलिए वह उन्नाव ज़िलेके रनजीत-पुरवा स्कूलमें भर्ती किये गये। पर वह स्कूल शीघ्र ही टूट गया। इसके बाद फतहपुर भेजे गये। पर वह डबल प्रोमोशन चाहते थे और डबल प्रोमोशन वहाँ मिला नहीं, इस कारण उन्नाव चले गये। किन्तु ये सभी स्थान उनके गाँवसे दूर थे। इस कारण उनके पिताने उन्हें अपने पास बुलानेका निश्चय किया।

अपनी स्कूली शिक्षाका अनुभव स्वयं द्विवेदीजीने इस प्रकार लिखा है—"·········बरेलीके ज़िला-स्कूलमें अंग्रेज़ी पढ़ने गया। आटा, दाल घरसे पीठपर लादकर ले जाता था। दो आने फ़ीस देता था। दाल ही में आटेके पेड़े या टिकियाएं पका करके पेट-पूजा करता था। रोटी बनाना तब मुझे आता ही न था। संस्कृत भाषा उस समय उस स्कूलमें वैसी ही अछूत समझी गई थी, जैसे कि मद्रासके नम्बूदरी ब्राह्मणोंमें वहाँ की शूद्र जाति समझी जाती है। विवश होकर अंग्रेज़ीके साथ फ़ारसी पढ़ता था। एक वर्ष किसी तरह वहाँ काटा। फिर पुरवा, फतेहपुर और उन्नावके स्कूलोंमें चार वर्ष काटे। कौटुम्बिक दुरवस्थाके कारण मैं उससे आगे न पढ़ सका। मेरी स्कूली शिक्षा वहीं समाप्त हो गई।" डॉ० उदयभानु सिंहजीने अपने निबन्धमें द्विवेदीजीकी इस समयकी एक घटना लिखी है, जिससे उनकी आर्थिक स्थितिपर भी प्रकाश पड़ता है। उन्होंने लिखा है "·········एक बार तो जाड़ेकी ऋतुमें सारी रात पैदल चलकर पाँच बजे सबेरे घर पहुँचे। द्वार बन्द था, माँ चक्की पीस रही थी। बालककी पुकार सुनकर ससम्भ्रम दौड़ पड़ी।·········" इस प्रकार कठिन परिश्रम और घरवालोंके उद्योगके बावजूद भी घोर ग़रीबीके कारण महावीरप्रसाद द्विवेदीकी शिक्षा उचित रूपसे न हो सकी।

अपने पिताके बुलाने पर वह उनके पास बम्बई चले गये। बम्बई उसी समय औद्योगिक शहर हो गया था। वहाँ वह विभिन्न भाषाभाषियोंके

सम्पर्कमें आये। विद्याके प्रति अनुराग उनके मनमें पहले ही जग चुका था। सिर्फ़ ग़रीबीसे पैदा हुई असुविधाके कारण उनकी पढ़ाई रुक गई थी। बम्बईमें वह मराठी और गुजराती भाषाभाषी लोगोंके सम्पर्कमें आये। इस सम्पर्कका प्रभाव उन पर पड़ा; उन्होंने मराठी और गुजराती का अभ्यास कर लिया। उनके पड़ोसमें कुछ रेलवेके क्लर्क थे। ग़रीबी थी ही; रेलवेके क्लर्कोंके सम्पर्कसे रेलवेमें नौकरी करनेकी इच्छा पैदा हुई। प्रारम्भिक अंग्रेज़ीका ज्ञान था ही। रेलवेकी नौकरी करके नागपुर गये। नागपुरसे अजमेर चले गये। वहाँ राजपूताना रेलवेके लोको सुपरिण्टेण्डेण्टके आफ़िसमें १५) मासिक पर क्लर्क हो गये। डॉ० उदयभानुसिंह जीने लिखा है—उस पन्द्रह रुपयेमेंसे "........पाँच रुपया वे अपनी माता जीके लिए घर भेजते थे, पाँचमें अपना ख़र्च चलाते थे और अवशिष्ट पाँचमें एक गृह-शिक्षक रखकर विद्याध्ययन करते थे।........" इससे उनकी ग़रीबीका पता तो लगता ही है; साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि द्विवेदी जीके अन्दर विद्याके प्रति प्रगाढ़ अनुराग और परिवारके प्रति जिम्मेदारीकी गम्भीर भावना प्रारम्भसे ही थी।

अजमेरमें उनका मन न लगा। वह पुनः बम्बई वापस आ गये। बम्बईमें उन्होंने टेलीग्राफी सीखी और जी० आई० पी० रेलवेमें सिग्नलर हो गये। इस समय उनकी आयु क़रीब बीस वर्षके थी। सिग्नलरके बाद उन्होंने टिकट बाबू, माल बाबू, स्टेशन मास्टर और प्लेटियर आदिके भी काम किये। स्वभावसे भी विद्यानुरागी और साहित्यिक होते हुए भी, उन्हें सर्वथा असाहित्यिक काम करना पड़ा। पर अपने कामके प्रति जिम्मेदारी निभानेमें उन्होंने कभी भी कोताही नहीं की। उन्होंने अपने मनको अपनी भावनाओंका दास नहीं बनाया। मन पर शासन किया। मनको काममें जोता। काममें मन लगानेके कारण उनका काम सदैव अच्छा रहा। फलस्वरूप पदोन्नति होती गई। इण्डियन मिडलैण्ड रेलवेके खुलनेपर झाँसी

में उसके ट्रैफिक मैनेजरके दफ्तरमें टेलीग्राफ-इन्सपेक्टर नियुक्त हुए। इस काममें उन्हें बराबर दौरा करना पड़ता था। बराबर दौरेपर रहनेके कारण उनके अध्ययनमें बाधा पड़ती थी। इस कारण अवसर देख कर उन्होंने ट्रैफिक मैनेजरके दफ्तरमें बदली करा ली। इसी समय द्विवेदीजी ने नये तरहके लाइन-क्लियरका आविष्कार किया। तारबर्की पर अंग्रेज़ीमें एक पुस्तक लिखी। इस बीच आई० एम० रेलवे, जी० आई० पी० रेलवेसे मिला दी गई। इस समय पदोन्नतिके साथ उन्हें बम्बई जाना पड़ा। किन्तु इस बीच उनका साहित्यिक अध्ययन बराबर आगे बढ़ता जा रहा था। बम्बईका जीवन उनके मनके अनुकूल न लगा। अतः ऊँचे पदका लोभ त्याग कर उन्होंने फिर अपना तबादला झाँसी करा लिया।

झाँसीमें पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी डिस्ट्रिक्ट ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेण्टके आफिसमें पाँच वर्ष तक चीफ क्लर्क रहे। इस बीचकी दो घटनाओंका ज्ञान मुझे पं० देवीदत्तजी शुक्लके द्वारा हुआ। उन दिनों झाँसीसे रेलवेकी छपाईका काम कानपुर जाता था। रेलवेके ही कुछ लोग छपाईका काम लेकर कानपुर जाते थे और अपने खर्चका तथा छपाईका बिल भी दफ्तर को देते थे। संयोगवश एक बार द्विवेदीजीको छपाईका काम लेकर कानपुर जाना पड़ा। उन्होंने वापस आकर जो बिल दफ्तरको दिया, वह पहलेके बिलोंसे बहुत कम था। अफ़सरने पूछा—'क्यों इतना कम कैसे लगा?' द्विवेदीजीने कहा 'मैं कम वेशी क्या जानूँ, जो लगा वह दिया।' बात असलमें यह थी कि सभी कर्मचारी ज़्यादा रुपयोंका बिल देकर कुछ स्वयं खाते थे। पर द्विवेदीजी तो ईमानदार थे। अतः उन्होंने असली खर्चका बिल दिया। इससे उनकी ईमानदारीकी धाक अधिकारियों पर जम गई। अब द्विवेदीजीको ही छपाईके कामसे भेजा जाने लगा। द्विवेदीजीके एक जायसवाल मित्र थे, उन्होंने द्विवेदीजीकी प्रेरणासे एक प्रेस खोल लिया। इस प्रेससे वाजिब दाम पर वह छपाईका काम करा

लिया करते थे। द्विवेदीजीकी मैत्रीसे उनका प्रेस चल निकला। पर द्विवेदीजीने उनसे कोई लाभ नहीं लिया। बल्कि उनके एक ग़रीब रिश्तेदारको अपने ख़र्चसे बी० ए० तक पढ़ा भी दिया।' इसी प्रकारकी एक दूसरी घटना भी है। द्विवेदीजीके एक ब्राह्मण मित्र झाँसी में रहते थे। उनके तीन पुत्र थे और एक पुत्री थी। दैवयोगसे वह बीमार पड़े और मरने लगे। मरते समय द्विवेदीजी उनके पास थे। मृत्युके समय वह व्याकुल होकर रोने लगे। द्विवेदीजीने समझाया, शान्त किया और उनसे उनकी अन्तिम इच्छा पूछी। उन्होंने आँखोंमें आँसू भर कर अपनी सन्तानकी ओर इशारा किया। द्विवेदीजीने कहा—'आप निश्चिन्त होकर जाइए। ये लड़के हमारे हैं।' और उनकी मृत्युके बाद वस्तुतः द्विवेदीजीने उनके बच्चोंको पूरा प्यार दिया। उन्हें पढ़ाया-लिखाया। एक लड़केको इंगलैण्ड भी भेजा। यहाँ तक कि उन्हें पढ़ानेके लिए एक जमीन्दारकी प्रशस्ति भी की। पर उन बच्चोंको पढ़ा लिखाकर योग्य ही नहीं बनाया—शादी-ब्याह भी किया। ग़रीबकी मैत्रीको और ऐसी मैत्रीको जिससे कुछ प्राप्तिकी कभी भी सम्भावना नहीं थी, इस ऊँचाई तक पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीने निभाया।

झाँसीमें रहते हुए उनकी साहित्यिक प्रवृत्ति बढ़ चली। बेकन-विचार रत्नावली और भामिनी-विलास निकल चुका था। हिन्दी कालिदास और नैषध-चरित-चर्चा द्वारा द्विवेदीजीका समालोचक रूप प्रकट हो चुका था। 'समाचारपत्र सम्पादकस्तवः' द्वारा उनकी सम्पादनकलाके आदर्शका भावप्रवण रूप स्पष्ट हो चुका था। 'गंगालहरी', 'ऋतुतरंगिणी' और 'विहारवाटिका' द्वारा वह कवि रूपमें भी आ चुके थे। वेंकटेश्वर समाचार, भारतमित्र, नागरीप्रचारिणी पत्रिका और 'संस्कृत-चन्द्रिका'में उनकी रचनाएँ निकलने लगी थीं। सन् १६०० ई० में नागरीप्रचारिणी सभाके तत्त्वावधानमें इण्डियन प्रेस इलाहाबादसे "सरस्वती" नामक मासिक पत्रिकाका प्रकाशन हुआ। पहले वर्ष

"सरस्वती" की सम्पादक-समितिमें पाँच व्यक्ति थे—कार्तिकप्रसाद खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, जगन्नाथदास बी. ए., राधाकृष्णदास और श्यामसुन्दरदास। सम्पादक-समितिका कार्यालय काशीमें था। उस समय सम्पादक समितिके एक सदस्य श्री कार्तिकप्रसाद खत्रीने पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीको यह पत्र लिखा था:—

सरस्वती-सम्पादक-समिति कार्यालय,
गड़वासीटोला,
बनारस सिटी,
२६–६–१९००

महाशय,

अभीतक आपने अपने किसी लेखसे 'सरस्वती' को भूषित नहीं किया, जिसके लिए 'सरस्वती' को प्रार्थना है कि शीघ्र उसकी सुध लीजिए।

आपका
कार्तिकप्रसाद

इससे सिद्ध है कि पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी १९०० ई० में लेखकोंकी प्रथम श्रेणीमें आ गये थे। दूसरे साल 'सरस्वती' के सम्पादनकी जिम्मेदारी सिर्फ़ बा० श्यामसुन्दरदास पर ही रही। पर अपने बहुधन्धी जीवनके कारण बा० श्यामसुन्दरदासजीने अपनेको 'सरस्वती' की जिम्मेदारीसे मुक्त करना चाहा। योग्य सम्पादकको तलाश होने लगी। बा० श्यामसुन्दरदासजीने पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीको योग्य सम्पादक मानकर इण्डियन प्रेसके मालिक बाबू चिन्तामणि घोषसे कहा कि उन्हें 'सरस्वती' का सम्पादक बनाया जाय। बाबू चिन्तामणि घोषने पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीसे अनुरोध किया। इस प्रकार १९०३ ई० में द्विवेदीजी "सरस्वती" के सम्पादक हुए।

डॉ० उदयभानुसिंहने द्विवेदी लिखित और 'द्विवेदी-काव्य-माला' में संकलित 'समाचारपत्र-सम्पादकस्तवः' के आधार पर उस समयकी सम्पादन-कलाकी स्थितिको अपने महत्त्वपूर्ण निबन्धमें इस प्रकार लिखा है:—

"तत्कालीन दुर्विदग्ध मायावी सम्पादक अपनेको देशोपकारव्रती, नानाकला कौशल-कोविद, निःशेष-शास्त्र-दीक्षित, समस्त-भाषा-पण्डित और सकलकला-विशारद समझते थे। अपने पत्रमें वे बेसिर-पैरकी बातें करते, रुपया ऐंठनेके लिए अनेक प्रकारके वंचक विधान रचते, अपनी दोषराशि को तृणवत् और दूसरोंकी नन्हीं-सी त्रुटिको सुमेरु समझकर अलेख्य लेखों द्वारा अपना और पाठकोंका अकारण समय नष्ट कर देते थे। निस्सार निंद्य लेखोंको तो सादर स्थान देते और विद्वान के सम्मान्य लेखोंकी अवहेलना करते थे। आलोचनार्थ आई हुई पुस्तकोंका नाममात्र प्रकाशित करके मौन धारण कर लेते और दूसरोंकी न्याय-संगत समालोचनाकी भी निन्दा करते। दूसरे पत्रों और पुस्तकोंसे विषय चुराकर अपने पत्रकी उदरपूर्ति करते और उनका नाम तक न लेते थे। पत्रोत्तरके समय पूरे मौनी बन जाते, स्वार्थ-वश परम नम्रता दर्शाते और अपने दोषकी निदर्शना देखकर प्रलयंकर हरका-सा उग्ररूप धारण कर लेते थे। भली-बुरी ओषधियों, गईबीती पुस्तकों और सभी प्रकारके कूड़ा-करकटका विज्ञापन प्रकाशित करके पत्र-साहित्यको कलंकित करते थे। अपनी स्वतन्त्रता, विद्या और बलका दुरुपयोग करके अपमानजनक लेख छापते और फिर भय उपस्थित होने पर हाथ जोड़कर क्षमा माँगते थे।" ऐसी विकट परिस्थितिमें पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीने अपने लिए चार आदर्श निश्चित किये—१—समयकी पाबन्दी, २—मालिकों का विश्वासभाजन बनना, ३—अपने हानिलाभकी उपेक्षा करके पाठकोंके हानिलाभका ध्यान रखना और ४—न्यायपथसे कभी भी विचलित न होना।

संसारका नियम हो या न हो; पर आमतौरसे सभी महत्त्वपूर्ण कार्योंमें विघ्न होता ही है। विघ्नोंकी उपेक्षा करके और संकटोंको झेलकर भी जो

अपने आदर्श पर अटल रहता है, वही चरित्रवान व्यक्ति माना जाता है। द्विवेदीजीने जब हिन्दी सम्पादन-कलामें आदर्श उपस्थित करनेका निश्चय किया, उसी समय उनपर एक संकट आ पहुँचा। झाँसी स्टेशनके पुराने डिस्ट्रिक्ट ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेण्टका तबादला हो गया। उनकी जगह पर जो नये साहब आये, उनका बर्ताव गुलामोंसे ही बढ़कर था। पर द्विवेदीजी रेलवेके नौकर होते हुए भी गुलाम नहीं थे—वह मनुष्य और स्वाभिमानी मनुष्य थे। इसके अलावा आदर्शनिष्ठाके साथ वह 'सरस्वती' के सम्पादक भी थे। सम्पादकका स्वाभाविक धर्म न्यायनिष्ठ होना होता है, वह अन्यायका प्रतिकार ही नहीं करता, अन्यायके प्रतिकारकी प्रेरणा भी देता है। सम्पादक 'कलरलेस' भी नहीं होता। वह तो न्यायके कलरके साथ ही पैदा होता है। नये डिस्ट्रिक्ट ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेण्टने चाहा कि द्विवेदीजी स्वयं तो बेगारी करें ही, अपने अधीन कर्मचारियोंसे भी बेगारी करवायें। पर द्विवेदीजीने जिस कुशलताके साथ नये साहबके नये फ़रमानका विरोध किया, उससे न केवल उनकी दृढ़ताका ही परिचय मिलता है, बल्कि यह भी पता लगता है कि वह अपने अधीनोंको संकटसे बचाकर और स्वयं संकट झेलकर अन्यायका प्रतिकार करते थे। यह गुण नेतृत्वका गुण होता है। कुशल नेता बराबर अपने अनुयायियोंकी रक्षा करते हुए चलता है। इस सम्बन्धमें द्विवेदीजीने क्या किया, यह उन्हींके शब्दोंमें इस प्रकार है:—

"मैं यदि किसीके अत्याचारको सह लूँ, तो उससे मेरी सहनशीलता तो अवश्य सूचित होती है, पर उससे मुझे औरों पर अत्याचार करनेका अधिकार नहीं हो जाता है, परन्तु कुछ समयोत्तर बानक कुछ ऐसा बना कि मेरे प्रभुने मेरे द्वारा औरोंपर भी अत्याचार कराना चाहा। हुक्म हुआ कि इतने कर्मचारियोंको लेकर रोज़ सुबह ८ बजे दफ्तरमें आया करो और ठीक दस बजे मेरे काग़ज़ मेरे मेज़पर मुझे रखे मिलें। मैंने कहा मैं आऊँगा पर औरोंको आनेके लिए लाचार न करूँगा, उन्हें हुक्म देना हुजूरका

काम है। बस बात बढ़ी और बिना किसी सोच-विचारके मैंने इस्तीफ़ा दे दिया। बादको उसे वापस लेनेके लिए इशारे ही नहीं, सिफ़ारिशें तक की गईं, पर सब व्यर्थ हुआ। क्या इस्तीफ़ा वापस लेना चाहिए? यह पूछने पर मेरी पत्नीने विषरण होकर कहा—'क्या थूककर भी उसे कोई चाटता है?'—मैं बोला—'नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा, तुम धन्य हो।'—तब उसने ८ आना रोज तककी आमदनीसे भी मुझे खिलाने-पिलाने और गृहकार्य चलानेका दृढ़ संकल्प किया, 'सरस्वती' की सेवासे मुझे हर महीने जो २० रुपया उजरत और तीन रुपया डाकखर्चकी आमदनी होती थी, उसीसे सन्तुष्ट रहनेका निश्चय किया। मैंने सोचा किसी समय तो मुझे महीनेमें १५ रुपये ही मिलते थे, २३ रुपये तो उसके ड्योढ़ेसे भी अधिक हैं। इतनी आमदनी मुझ देहातीके लिए कम नहीं।"

यदि द्विवेदीजी चाहते तो अपने अधीन कर्मचारियोंको काममें जोत कर, साहब को ख़ुशकर, स्वयं आरामसे रह सकते थे। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। किन्तु उन्होंने साहबको आज्ञाकी अवज्ञा भी नहीं की। बड़ी ख़ूबीसे साहबकी अन्याय पूर्ण आज्ञाका प्रतिवाद किया। अन्यायका प्रतिवाद करके साहबके हाथमें बर्खास्त करनेका अधिकार भी नहीं रहने दिया। स्वयं इस्तीफ़ा देकर साहबके मुखपर थप्पड़ जड़ दिया। इसके लिए जिस त्याग की ज़रूरत थी, वह भी किया। १५०) रु० मासिककी नौकरी और ५०) मासिक भत्ता—कुल २००) रु० मासिक की १९०३ ई० की आमदनी पर लात मार दिया और निकल पड़े कष्ट झेलनेके कठिन कण्टकित पथ पर। इस प्रकार जिस "सरस्वती" के द्वारा उन्होंने सम्पूर्ण हिन्दी-जगत्का नियमन किया—आधुनिक हिन्दी साहित्यका नव-निर्माण किया—उसका सम्पादन स्वीकार करते ही गम्भीरताके साथ त्याग किया।

"सरस्वती" का सम्पादन करते हुए पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीकी पहली और ज़ोरकी टक्कर नागरीप्रचारिणी सभा, काशीके प्रमुख नेता बाबू

श्यामसुन्दरदाससे हुई। द्विवेदीजी किन्तु, परन्तु, शायद और सम्भवतःकी लफ्फाजी वाले समालोचक नहीं थे। वह जैसे दृढ़ चरित्रके व्यक्ति थे, उसी प्रकार निश्चित और दृढ़ लेखनीके समालोचक भी थे। उन्होंने सभाकी खोज रिपोर्टकी खरी समालोचना की। खरी समालोचनाको बहुत कम लोग सहन करनेकी क्षमता रखते हैं। सभाके सदस्योंने "सरस्वती" से अपने समर्थन वापस लेनेकी धमकी दी। पर द्विवेदीजी इण्डियन प्रेसके मालिक बाबू चिन्तामणि घोषका विश्वास प्राप्त कर चुके थे। अतः उन्होंने द्विवेदीजी पर ही सारा फैसला छोड़ दिया। द्विवेदीजीने दूने उत्साहसे अपनी धारणाके अनुसार सभाके ग़लत कामोंका सप्रमाण पर्दाफाश करते हुए एक लम्बा वक्तव्य लिखकर सभाके पास भेजा। पर उसमें दिखाये गये दोषोंको सभाके कार्यकर्ताओंने न तो दूर करनेकी चेष्टा की और न उनके लिए खेद ही प्रदर्शित किया। नागरीप्रचारिणी सभामें सुरक्षित द्विवेदी जीके पत्रोंमें कुछ ऐसे पत्र हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि द्विवेदीजीके मनमें एक बार यह आया कि उस वक्तव्यको प्रकाशित कर दें। पर उन्होंने सोचा कि पुस्तकें और लेख लिखकर, सभासदोंकी संख्या बढ़ाकर, सभाके कितने ही काम करके और गाँठका पैसा भी खर्च करके, जिस सभाकी सहायता की; जिस सभाके कई साल तक सदस्य रहे, उसके विरुद्ध लेख लिख कर उसे हानि पहुँचाना ठीक नहीं। इस सम्बन्धमें उनका सिद्धान्त था—'**विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्।**' द्विवेदीजी अपने युगमें प्रसिद्ध लड़ाके थे, पर उस लड़ाईमें भी उनकी नैतिकता थी। वह सार्वजनिक जीवनको बिगाड़नेवाली लड़ाई नहीं लड़ते थे। उनका क्रोध भी संयमित था। पर वह समझौतापरस्त भी नहीं थे। उन्होंने "सरस्वती" पर से नागरीप्रचारिणी सभाका समर्थन हटा दिया, सभाकी सदस्यताको छोड़ दिया और जन्मभर नागरीप्रचारिणी सभाके भवनमें भी जानेसे बचते रहे। इस प्रकार जहाँ उन्होंने सत्यको स्पष्ट रूपमें कहनेकी अटूट दृढ़ता

दिखाई, वहाँ ही सभाके विरुद्ध लिखनेसे अपनेको रोककर अपने संयम और संस्कृत रुचिका परिचय भी दिया। उन्होंने सत्यको भी निबाहा, सभा की सदस्यता तकसे अलग हो गये और सौन्दर्यकी भी रक्षा की, सभाके विरुद्ध सार्वजनिक रूपसे कुछ नहीं किया।

भाषाके मामलेको लेकर बा० बालमुकुन्द गुप्तसे भी उनका संघर्ष हो गया था। दोनों ओरसे अनेक साहित्य-महारथी क्षेत्रमें उतर आये थे। दोनों समान शक्तिके व्यक्ति थे। भाषा-सम्बन्धी यह विवाद हिन्दी भाषाके इतिहासकी एक घटना हो गई। पर इस विवादका धरातल द्विवेदीजीकी ओरसे ओछा नहीं होने पाया। डॉ० काशीप्रसाद जायसवालसे भी द्विवेदी जीका कुछ मतभेद हुआ। दोनों ओरसे व्यंगवाण भी छूटे। पर दोनों ही एक दूसरेके हितैषी भी बने रहे, एक दूसरेके काम भी आते रहे। विवादका धरातल बौद्धिक ही बना रहा। पं० लक्ष्मीधर वाजपेयीसे द्विवेदी जीका पहले विवाद हुआ, पर बादमें मैत्री हो गई। वस्तुतः उनके विवादों में भी व्यापक दृष्टि और सिद्धान्तकी गम्भीरता होती थी। सत्यप्रियता, न्यायनिष्ठा, स्पष्टवादिता और हिन्दीहितैषितासे हटकर उन्होंने विवाद किया ही नहीं। वह जैसा सोचते थे, सोचकर जो निश्चय करते थे, उसीके अनुकूल उनका आचरण भी होता था। इसीलिए उनकी क्रियामें तीव्रता भी होती थी। उनके जीवनका सौन्दर्य पालिशमें नहीं, सत्य और लोक-कल्याणकी प्रेरणामें था। वह ग़रीब घरमें पैदा हुए थे, ग़रीबीमें पले थे, कठोर संघर्ष करके बढ़े थे और धनी बनना, धन बटोर कर, धनके बल पर अथवा पदके बल पर बड़ा आदमी बनना उनका आदर्श नहीं था। इसी-लिए छलसे बात करने और छलपूर्ण व्यवहारसे उनको चिढ़ थी। उनमें स्वार्थ-साधनकी प्रवृत्ति नहीं थी, इसलिए दबकर बात करनेका उन्हें अभ्यास नहीं था। उन्होंने एक पत्रमें लिखा भी था "....मैं रिश्वत देना नहीं चाहता। ....मैं झूठ बोलनेसे डरता हूँ।" स्वाभिमान उनमें कूट-कूटकर भरा था।

इन्हीं सब कारणोंसे वह बहुत कुछ कठोर थे। उनसे प्रायः लोगोंसे लड़ाइयाँ हो जाया करती थीं। किंतु लड़ाइयोंमें भी वह संयम रखते थे। इसलिए उनकी लड़ाइयोंका धरातल ऊँचा होता था। वाद-प्रतिवाद और संवादका धरातल शुभ होता था।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी संयमके अवतार थे। घोर ग़रीबीका सामना उन्होंने कठिन संयमसे किया। वह नियमित समयपर प्रातःकाल उठते। नित्यकर्मसे निवृत्त होकर कुछ टहलते। फिर अपना साहित्यिक कार्य करते। रेलवेकी नौकरी करते हुए भी, मौक़ा मिलनेपर समय निकालकर उन्होंने मराठी, गुजराती और बंगला भाषापर अधिकार प्राप्त किया। समयपर अपने रेलवेकी नौकरीपर जाते। रेलवेकी नौकरीमें वह अपना रोज़का काम रोज़ समाप्त कर दिया करते थे। ऐसा नहीं होता था कि आजका काम कलके लिए पड़ा रहे। रेलवेके दफ़्तरका काम पूरा करके वह घर आते। हाथ-मुँह धोकर, थोड़ा जलपान करके पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते। पत्रोंका उत्तर देते। उत्तर न देने लायक़ पत्रोंपर 'नो रिप्लाई' लिखते। सबका रिकार्ड रजिस्टर पर रखते। घरका हिसाब रखते। अध्ययन करते। रेलवेकी नौकरी छोड़ देने पर सारा समय 'सरस्वती' को देते। कोई भी लेख बिना अच्छी तरह जाँचे उसकी भाषाको बिना ठीक-ठाक किये कभी भी प्रेसमें नहीं देते थे। उनके संशोधित लेख नागरीप्रचारिणी सभाके संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। वे अशुद्धि-भरी रचनाओंका आद्योपान्त संशोधन कर दिया करते थे। कविताओंका कायाकल्प कर दिया करते थे। कभी-कभी सम्पूर्ण रचना ही बदल देते। लेखक सिर्फ़ अपना नाम देखकर अपनी रचना समझता था। अस्वीकृत रचनाओंके दोषोंको स्पष्ट करते हुए पत्र लिखते थे। कभी-कभी ग्रन्थ-निर्देश भी कर दिया करते थे। ऐसा करते हुए भी वह लेखकोंके साथ बहुत प्रेम-पूर्ण व्यवहार करते थे। लेखकोंसे लेख मँगाते समय उन्हें अनेक विषय सुझाते थे और सहायक ग्रन्थोंका नाम भी बताते थे। सच्ची लगन, विस्तृत

अध्ययन, सुन्दर शैली और संकोची स्वभाववाले लेखकोंकी तो वह ख़ुशामद तक करते थे। ऐसा करनेमें उन्हें पत्र-व्यवहार भी बहुत करना पड़ता था। 'सरस्वती' के लिए छः महीनेकी सामग्री वह अपने पास बराबर प्रस्तुत रखते थे। जब कभी वह बीमार हुए, छुट्टी ली, या अन्तमें अवकाश भी ग्रहण किया, तब अपने उत्तराधिकारीको कई महीनेकी सामग्री देकर गये। उनके लगभग सत्रह वर्षोंके सम्पादन-कालमें एक बार भी 'सरस्वती' का प्रकाशन नहीं रुका। इस प्रकार उनके जीवनमें संयम और परिश्रमका अपूर्व योग था। कुछ लोग प्रतिभाको एक रहस्य समझते हैं। पर यह भ्रम है। वस्तुतः प्रतिभा संयम और परिश्रमके परिणामका ही दूसरा नाम है। बुद्ध, महावीर, चाणक्य, चन्द्रगुप्त, अशोक, तुलसीदास, रवीन्द्रनाथ और गान्धीजी सभीकी प्रतिभाका एक ही रहस्य है—अटूट संयम और कठिन परिश्रम!

द्विवेदीजीके संयममें अनेकरूपता थी। उनका संयम जीवन-व्यापी था। ग़रीबीसे उन्होंने जीवन बिताना सीखा था। वह गाढ़ेका कपड़ा पहनते। अपने पर कम-से-कम ख़र्च करते। अपनी कम-से-कम आमदनीमें भी कुछ न कुछ बचा कर रखते। यह ठीक है कि सन्तान न होनेके कारण किसी सीमा तक इस काममें उन्हें कुछ सुविधा भी थी। पर यह ऐसा कारण नहीं है कि जिसे प्रधान माना जाय। अनेक ऐसे सन्तानहीन व्यक्ति हैं, जो अन्य आदतों पर अधिक व्यय करते हैं। पर द्विवेदीजी संयमी थे। उनके जीवनमें न बुरी (असामाजिक) भावनाएं थीं और न उनकी वैसी आदत थी। वे पूर्ण संयमी थे। पर उनका संयम कभी भी कंजूसीकी सीमामें नहीं गया। वह अपने अतिथिका पूर्ण सत्कार करते थे। घर आये साधारण विद्यार्थीको भी जलपान कराते। उनके कोई सन्तान नहीं थी। पर उन्होंने औरोंकी सन्तानको अपनी सन्तान बना लिया था। अपनी बहनकी सौतकी सन्तानको उन्होंने अपनी सन्तान बना लिया। अपने मित्रोंकी सन्तानके साथ अपनी सन्तान-जैसा व्यवहार किया। अनेक लड़कोंको

बी० ए०, एम० ए० तक पढ़ाया। रिश्तेकी तीन भानजिओंकी शादियाँ की, उनका गौना दिया। ग़ैरोंकी भी दो लड़कियाँ व्याहीं। अनेक लड़कियों की शादीमें सहायता दी। अनेक विधवाओंको मासिक वृत्ति दी। कुएँ खुदवाये। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें छात्र वृत्तिके लिए ६४०० रु० का दान दिया। १००० रु० नागरीप्रचारणी सभा काशीको दान दिया। इस प्रकार पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीके जीवनमें वदान्यता और मितव्यियताका असाधारण संयोग था। उनका संग्रह दानके लिए था। वह स्वभावके कुछ क्रोधी थे—सम्भवतः उनमें कुछ पूर्वाग्रह भी था—पर यह पूर्वाग्रह उनकी दानवृत्ति और न्यायनिष्ठा पर कभी हावी नहीं हो सका। नागरीप्रचारिणी सभा काशीके कुछ अधिकारियोंसे उनका झगड़ा था; पर नागरीप्रचारिणी सभाको ही उन्होंने अपना सर्वोत्तम दान दिया।

द्विवेदीजी निपट गाँवके ग़रीब ब्राह्मण घरमें पैदा हुए थे। कठिन परिश्रम करते हुए अनेक आर्थिक असुविधाओंके बीचसे वह गुज़रे थे। ऐसी परिस्थितिमें भी उनके अन्दर एक व्यवस्था थी। उनके घरकी चीज़ अस्तव्यस्त और फिंकी हुई नहीं रहती थी। किताब, काग़ज़, क़लम-दावात सभी व्यवस्थित, सभी साफ़। यहाँ तक कि लिखनेके बाद वह कलमको पोंछकर रखते थे। काग़ज़के चिट तकको सम्हाल कर रखते और उसका उपयोग करते थे। सावधानीसे पत्र-पत्रिका पढ़ते और आवश्यक ख़बरों पर निशान लगाकर सम्हाल कर रखते। उनके घरमें कपड़ा-बिछौना करीनेसे रखा होता था, उनके घरमें टेबल-कुर्सी, गुलदस्ता तथा अन्य चमक-दमकका सामान नहीं था। उनका घर साधारण गृहस्थका घर था। पर व्यवस्था और सफ़ाईके कारण उनका घर मन्दिरकी तरह साफ़ और स्वच्छ रहता था। उसमें सादगी और स्वच्छतासे निर्मित सौन्दर्य-भावना थी। उनका घर उनके मानसको व्यक्त करता था और उनका मानस उनके घरकी तरह व्यवस्थित और स्वच्छ था। इसी कारण द्विवेदीजी

अव्यवस्था और गन्दगीको बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। उन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्यको भी व्यवस्थित कर दिया। जब वह गाँवमें रहते थे, और बहुत कमज़ोर हो गये थे। उस समय भी उनकी व्यवस्था-प्रियता ज्यों की त्यों बनी थी। श्रीयज्ञदत्त शुक्लने द्विवेदी अभिनन्दन-ग्रन्थमें उनकी व्यवस्था-प्रियताके सम्बन्धमें लिखा है—"....प्रतिदिन सायंकाल वे जब अपने बाग़में घूमने जाते हैं, तब बाग़के वृक्षोंका भली भाँति निरीक्षण करते हैं। यही नहीं, वे निरीक्षण-द्वारा इसका भी अनुमान कर लेते हैं कि किस वृक्षमें कितने फल लगे हुए हैं। इसी प्रकार वे अपने खेतोंका भी खूब निरीक्षण करते हैं। शामको टहलते हुए वे प्रत्येक खेतमें यह देखते हैं कि उसे सींचनेकी आवश्यकता है या नहीं, या उसमें कोई कीड़ा तो नहीं लग गया है।" अपने प्रिय जनोंकी आर्थिक व्यवस्थाका भी ख्याल रखते थे। सलाह भी दिया करते थे।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीने आलोचनाके शास्त्रीय ग्रन्थ नहीं लिखे। शायद वह आलोचनाके शास्त्री ग्रन्थोंके निर्माणकी परिस्थिति भी नहीं थी। द्विवेदीजीने हिन्दी भाषाका सुधार, लोक-रुचिका परिष्कार और लेखक निर्माणका कार्य किया। इसके लिए उन्होंने नाना विषयोंमें अपनी लेखनीका प्रयोग भी किया। वस्तुतः लिखनेकी सफलता वे इसी बातमें मानते थे कि कठिनसे कठिन विषय भी ऐसे सरल रूपमें रख दिये जाँय कि साधारण पाठक भी उसे समझ जाय। इसी कारण उनमें गूढ़-गुंफित परम्पराकी कमी नज़र आती है। पर व्याकरणका उन्होंने सदैव ध्यान रक्खा। व्याकरण-सिद्ध भाषा लिखनेवाले बहुतसे लेखक भी उन्होंने पैदा किये। किन्तु भाषाको सुधारते हुए भी उन्होंने अनेक आलोचनात्मक लेख लिखे। उनकी आलोचनाओंमें दो प्रकारके द्वन्द्वकी परिणति है—बाह्य जगत्‌में नवीन और प्राचीन, पूर्व और पश्चिमकी विचारधाराका द्वन्द्व और अन्तरमें कटु सत्य और कोमल हृदयका द्वन्द्व। संस्कृतके घने सम्पर्कके कारण जहाँ उनमें

प्राचीनताके प्रति प्रेम है, वहीं विविध भाषाओंके साहित्यके घनिष्ठ सम्पर्कके कारण पश्चिमसे आनेवाले आधुनिक ज्ञान-विज्ञानके प्रति तीव्र आकर्षण भी है। यही कारण था कि उन्होंने 'सरस्वती' के अनेक अंकोंमें दस दस विषयों पर सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखीं। इसी कारण कहीं-कहीं उनकी आलोचनाओंमें पूर्व और पश्चिमके सिद्धान्तोंका समन्वय भी दृष्टिगोचर होता है। पर इस समन्वयका अपेक्षित विकास शायद द्विवेदीजीमें नहीं हुआ था। इसीलिए छायावादकी उचित प्रशंसा वे नहीं कर सके। पर इस समन्वयका प्रारम्भिक रूप द्विवेदीजीके चिन्तनमें प्रकट हो चुका था। द्विवेदीजीने जिस सत्यको अध्ययन, चिन्तन, मनन द्वारा जान लिया था, उसके प्रति उनमें अटूट श्रद्धा थी; वह सत्यको शब्दोंके कौशलसे फुसलाना पाप समझते थे। सत्यनिष्ठाके कारण ही अपने घनिष्ठतम मित्रों तकके लेखोंमें आवश्यक होने पर वह काट-छाँट करना अपना कर्तव्य समझते थे। सत्यनिष्ठाके कारण ही वह अपनी बातों और धारणाओंमें आवश्यक संशोधन भी स्वीकार करते थे। किन्तु इस सत्यनिष्ठाके कारण ही उन्हें अपने कोमल हृदयको दबाना भी पड़ता था। मित्रों तकका विरोध करना पड़ता था, मित्रोंसे भी झगड़ना पड़ता था। पर यदि उनमें यह सत्यनिष्ठा न होती, तो वह अपने युगको रूप न दे सकते। द्विवेदीजीकी आलोचनामें विचारोंकी सजगता, तर्कका पैनापन, कभी-कभी व्यंगोंकी भरमार, संस्कृत, उर्दू और फ़ारसीका आवश्यक पुट; अपनी बातको फेर-बदलकर पाठकके मनमें बैठा देने और विरोधीको कायल कर देनेकी महत्त्वपूर्ण शैली है। इसी व्यास शैली-द्वारा उन्होंने अपने युगके झाड़-झंखाड़ोंको साफ़ किया था; इसी शैली-द्वारा उन्होंने भाषाका सुधार किया था; इसी शैली-द्वारा उन्होंने नवीन लोकरुचिका निर्माण किया था। किन्तु सिर्फ़ शैली-द्वारा ही कोई युग-निर्माता नहीं हो जाता। द्विवेदीजीमें व्यास-शैलीके साथ ही गम्भीर सत्यनिष्ठा थी। सत्यनिष्ठाके साथ ही लेखक पैदा करने, उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार

करनेकी आदत थी। वह अपने साथियोंके साथ 'संस्कृत' व्यवहार नहीं करते थे; अपने साथियोंके साथ उनका व्यवहार सच्चाईसे भरा-पूरा होता था; धनी, मानी और वरिष्ठ वर्गके साथीके प्रति एक व्यवहार तथा ग़रीब और अख्यात साथीके साथ दूसरा व्यवहार करने वाले—दोमुँहे नेता वे नहीं थे। वह बलाबल तौलकर नहीं चलते थे; सत्य-असत्यको देखकर सत्यके साथ चलते थे। इसी कारण उनकी ईमानदारी और सच्चाईमें किसीको अविश्वास नहीं हुआ। वह जन-साधारण और साहित्यिकोंकी श्रद्धाको सहज ही आकर्षित करते थे। इसके साथ ही उनमें कठिन परिश्रमशीलता, विविध भाषा और साहित्यका ज्ञान तथा व्यापक जानकारी भी थी। इसीलिए पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजी अपने युगमें हिन्दीके महान् नेता हो सके।

'सरस्वती' के सम्पादनसे अवकाश ग्रहण करनेके बाद द्विवेदीजी अपने गाँव दौलतपुरमें रहने लगे। कर्तव्य-पालन और जिम्मेदारीकी भावना उनके अन्दर प्रारम्भसे ही थी। जब वह १५) महीना तनख़्वाह पाते थे, तब भी उसमेंसे ५) महीना बचा कर अपनी माँके पास भेजते थे। वह अपनी आवश्यकताको सीमित करके रखते थे और अपनी आमदनीमेंसे कुछ न कुछ बचाकर परहितमें लगाते थे। उनकी यही कर्तव्यपरायणता अब और बढ़ गई। जब वह दौलतपुर गाँवमें रहने लगे, तो गाँवके प्रति उनकी कर्तव्य-भावना अधिक जाग्रत् हुई। अपने गाँवमें हिन्दी पाठशाला, डाक-घर और एक छोटे अस्पतालका प्रबन्ध किया। वह स्वयं भी रोगियोंको दवाइयाँ देते थे। रोगियोंको—चाहे वह किसी भी जातिका हो—उसके घर जाकर देखते, दवाई देते और यदि आवश्यक समझते तो उसके लिए पथ्यका भी प्रबन्ध करते। रोगियोंके देखने और उनकी सेवामें वह अपनी सुविधा-असुविधाका ज़रा भी ध्यान नहीं रखते थे। गर्मीके दिनोंमें जब लू चलती होती, तब भी सिर और कानको दुपट्टेसे अच्छी तरह ढँककर रोगियोंके घर जाते थे। अपने जीवनमें तो वह व्यवस्था और सफ़ाईका ध्यान रखते ही थे;

गाँवकी सफ़ाईका ध्यान भी उन्हें था। प्रारम्भमें स्वयं गाँवकी सफ़ाई करते और लोगोंको सफ़ाई करनेके लिए प्रेरित करते। आगे चलकर गाँवकी सफ़ाईके ख्यालसे गाँवमें ही एक मेहतर भी बसा लिया।

गाँवमें खेती-गृहस्थी ही मुख्य धन्धा होता है। द्विवेदीजीके पास भी कुछ खेत थे। उन्होंने अपने विद्याव्यसनी मनको खेतीके काममें लगा दिया। जैसा कि पहले लिखा है, वह नित्यप्रति अपने खेतों पर घूमने जाते, खेतकी मिट्टी और फसलका निरीक्षण करते। हर एक बातका हिसाब रखते। यही नहीं, वह गाँव भरकी खेतीकी रक्षाकी भी व्यवस्था करते। गाँवके ग़रीब किसानोंको बिना सूद पर उधार रुपये देते। कभी-कभी किसानोंको बीज देते। इस प्रकार अपनी खेती और गाँवकी भी खेतीका प्रबन्ध करते। एक बार जब नीलगाय और बन्दरोंने गाँवकी खेतीको तबाह करना शुरू किया, तो द्विवेदीजीने अपने प्रियपात्र पं० श्रीराम शर्मासे कह कर नीलगाय और बन्दरोंका शिकार करवा दिया। इस दिशामें उन्होंने गाँववालोंकी मनोभावना का भी ख्याल नहीं किया। जिस कामको करनेका वह निश्चय कर लेते, उसे पूरा करनेमें ज़रा भी संकोच नहीं करते थे। गाँवमें अशिक्षा और कुसंस्कार तो था ही। बहुतसे गाँववाले अपने पशुओंको यों ही आवारागर्दकी भाँति छोड़ देते थे। ये पशु गाँवकी खेतीको नुक़सान पहुँचाते थे। द्विवेदीजीने गाँववालोंको समझाया। पर मुद्दतोंका कुसंस्कार भला उपदेशोंसे क्यों जाने लगा। लाचार होकर द्विवेदीजीको गाँवमें ही एक कानीहौज भी बनवा देना पड़ा। इससे कुछ लोगोंके स्वार्थ पर आघात पड़ा। कुछ लोगोंने द्विवेदीजीको बुरा-भला भी कहना शुरू किया। पर इसका उनके मन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह निर्लिप्त चित्तसे गाँवकी सेवा करते ही रहे।

ग्राम्य-जीवनका बाह्य ही नहीं, अन्तर भी विकृत हो चुका था। बाह्य सफ़ाई और व्यवस्थाको तो द्विवेदीजी सुधार ही रहे थे। आन्तरिक खराबीकी ओर भी उनका ध्यान गया। आपसी फूट, ईर्ष्या-द्वेषसे गाँवोंमें मुक़दमे-

बाजीका वातावरण गरम था। द्विवेदीजीने गाँवोंके अन्तस्‌को भी सुधारनेका काम शुरू कर दिया। गाँवोंको मुक़द्दमेबाजीसे बचानेकी गरजसे उन्होंने 'विलेज मुंसिफ़' का काम शुरू कर दिया। वह आस-पासके गाँवोंके तमाम मामलों-मुक़दमोंको निपटाया करते थे। वह गाँवसे, गाँवकी परिस्थितिसे और वहाँ वालोंकी प्रकृतिसे तो परिचित थे ही; फलतः बड़े-बड़े मामलों तकको समझा-बुझा कर आपसमें ही फ़ैसला करा देते थे। यथासम्भव झगड़ोंको कचहरी तक जाने ही नहीं देते थे। उनका फ़ैसला व्यावहारिक और क़ानूनी दोनों दृष्टिसे बड़े महत्त्वका होता था। उनको क़ानूनका ज्ञान भी इतना था कि आस-पासके लोग उनसे सलाह-मशविरा लिया करते थे। पर उनकी सलाह इस दृष्टिसे होती थी कि कोई अदालत तक न जाय और मजा तो यह था कि अदालतमें भी उन्हींका फ़ैसला मान्य हो जाता था। दौलतपुरमें रहते समय द्विवेदीजीकी दिनचर्या थी—प्रातःकाल उठ कर शौचादिसे निवृत्त हो खेतों पर टहलने जाना; लौटकर घर-द्वारकी सफ़ाई करना, स्नान-भोजनके बाद चिट्ठियोंका जवाब देना; अखबार, पत्र-पत्रिका आदिका अवलोकन करना; गाँवके मुक़दमोंको सुनना, उनपर विचार कर फ़ैसला देना अथवा समझौता करा देना; सन्ध्याको खेतोंकी ओर जाना; वापस आकर गाँव वालोंकी बातोंको सुनना। इसके बाद व्यालू और कुछ किताबोंका अवलोकन करते हुए सो जाना। इस प्रकार हिन्दीका यह महान् नेता अपने जीवनके अन्तिम प्रहरमें गाँवोंमें जाकर लोक-सेवा करता रहा। जीवनके जितने भी क्षण द्विवेदीजीके पास थे सबका उन्होंने सदुपयोग किया।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीको सदैव विपरीत परिस्थितियोंका सामना करना पड़ा। वह प्रारम्भमें ही उच्चशिक्षा प्राप्त करना चाहते थे। पर ग़रीबीके कारण उन्हें अपना अध्ययन रोक देना पड़ा। किन्तु ज्ञानकी उत्कट प्यास उनमें अन्त तक बनी रही। उनकी ग़रीबीने उन्हें नौकरी करनेके लिए बाध्य किया। ईमानदारीसे नौकरी करके, घर-गृहस्थीकी पूरी

जिम्मेदारी निभाते हुए भी, अपने पासका सारा समय उन्होंने अनेक भाषाओं और उनके विविध साहित्यके अध्ययनमें लगाया। अक्सर रात-रात जाग-जाग कर उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया। विविध स्थानोंपर जाकर विद्वानोंसे उन्होंने ज्ञानार्जन किया। अपने गम्भीर और असाधारण अध्ययनके बल पर ही वह एक मामूली क्लर्ककी स्थितिसे उठकर, अपनी परिस्थितियोंके सम्पूर्ण बन्धनोंको झटककर, हिन्दी साहित्यके एक युग-निर्माता हुए। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, मराठी, गुजराती, बंगला और अंग्रेज़ी भाषा तथा साहित्य पर उन्होंने अधिकार प्राप्त किया। ज्ञानकी इस कठिन साधनामें उन्होंने अपने शरीरको होम दिया। पहले उन्हें उनींद्र रोग हो गया। पर फिर भी उनकी ज्ञान-साधनामें कमी नहीं आई। 'सरस्वती' के सम्पादनमें वह लगे ही रहे। फिर उनका पेट खराब हुआ। अपने संयम और सात्त्विक चर्या-द्वारा उन्होंने कुछ समय तक अपनेको सम्हाला। पर वृद्धावस्थामें तो शरीरकी प्रत्येक कमज़ोरी उभर आती है। एकाएक द्विवेदीजीको जलोदर रोग हो गया। पहले तो ग्राममें किसीने उसे पहचाना ही नहीं। फिर जब डाक्टर शंकरदत्त शर्माने रोग को पहचाना तो रोग बहुत बढ़ चुका था। डाक्टर शर्माने सोचा कि अपने घर पर द्विवेदीजीको रखकर इलाज करनेसे शायद रोग दूर हो जाय। वह द्विवेदीजीको अपने घर पर बरेली ले गये। पर यह रोग तो मात्र रोग नहीं था, यह तो द्विवेदीजीका काल था। डाक्टरके इलाजका कोई भी परिणाम नहीं निकला और २१ दिसम्बर १६३८ को प्रातः ४ बजे महान् कर्मठ आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीने अपने नश्वर शरीरको छोड़ दिया।

—बैजनाथसिंह 'विनोद'

आचार्यदेव

श्री मैथिलीशरण गुप्तजी स्व० आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजी के बड़े प्रिय शिष्य हैं। उन्होंने आचार्य द्विवेदीजीके इस संस्मरण में यह प्रकट किया है कि किस प्रकार द्विवेदीजीने उन्हें बनाया था। इसीलिए इस संस्मरणका ऐतिहासिक महत्त्व है। इसी दृष्टिसे यहाँ इसे दिया जा रहा है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तका परिचय अन्यत्र उनको लिखे गये पत्रोंके प्रसंगमें दिया जा रहा है।

आचार्यदेव

मैं जब और कुछ न बन सका तब मैंने कवि बननेकी ठानी। हाय, कहीं सब पोले बाँस वेणु बन सकते !

एक जन, जो गधे पर बैठनेकी भी योग्यता न रखता था, बनाने-वालोंके बढ़ावेमें आकर घोड़े पर चढ़ बैठा। घोड़ा भी ऐसा, जो धरती पर पैर ही न रखना चाहता था। ऐसा आरोही तो उसके लिए अपमान-जनक था। परन्तु क्या जानें, घोड़ेको भी विनोद सूझा और वह उसे एक वर्जित स्थानमें ले दौड़ा। वहाँका प्रहरी सतर्क होकर चिल्लाया—सावधान ! परन्तु आरोही सावधान होकर भी क्या करे ? तब प्रहरीने शस्त्र सँभालकर कहा—अच्छा, चला आ—ऐसे ही ! अब आरोही चिल्लाया—दुहाई आपकी, मैं स्वयं नहीं आ रहा हूँ, यह दुर्मुख मुझे लिये आ रहा है ! प्रहरी भी समझ गया और जिसे अनधिकार प्रवेश करनेका दण्ड देने जा रहा था उस भाग्यहीन अथवा भाग्यवानकी उसे उलटी सँभाल करनी पड़ी।

कवि तो बनाये नहीं जाते, परन्तु कोप-भाजन होने योग्य होकर भी मैं पूज्य द्विवेदीजी महाराजका अनुग्रह-भाजन हो गया। इससे बढ़कर किसी-का क्या सौभाग्य होगा।

उन्चास-पचास वर्ष पहलेकी बात है। मैं कुछ पद्य बनाने लगा था। पण्डितजी उन दिनों झाँसीमें ही थे। उनका नाम मैं सुन चुका था और उनकी 'सरस्वती' के दर्शन भी मैंने पा लिये थे। मेरे मनमें प्रश्न उठा—क्या 'सरस्वती' में अन्य कवियोंकी भाँति मेरा नाम नहीं छप सकता ? इसका

उत्तर अपने ही दीर्घ निःश्वासके रूपमें मुझे मिल जाना चाहिए था, परन्तु लड़कपन अल्हड़ होता है और दुस्साहसी भी।

पिताजीके साकेतवासके पीछे, उनके नाते कृपा बनाये रखनेके प्रार्थी होकर, अपने काकाजीके साथ, हमलोग पहली बार कलक्टर साहबको जुहारने झाँसी गये थे। मेरे जानेका प्रधान उत्साह और ही था। भीतर-भीतर 'सरस्वती' में अपना नाम छपानेका डौल लगानेकी लालसासे और बाहर-बाहर ऐसे महानुभावके दर्शन करनेकी इच्छासे, अपने अग्रजको साथ लेकर मैं पण्डितजीके स्थानपर पहुँचा। घर छोटा ही था। द्वारपर बाँसकी सींकों की बनी लिपटी हुई चिक बँधी थी, जिसकी गोटका हरा कपड़ा कुछ फीका पड़ चला था। एक ओर उनके नामकी पट्टी लगी थी। दूसरी ओर भी एक पटली थी। उसमें लिखा था—सबेरे भेंट न होगी। हमलोग इस बातको सुन चुके थे। अतएव, तीसरे पहर गये थे। तब भी वे आफ़िससे नहीं लौटे थे। छोटेसे उसारेमें एक बेंच पड़ी थी। उसीपर हम बैठ गये। भीतर कमरेमें खुली अलमारियोंकी पुस्तकोंकी दूसरी दीवार-सी बनी थी। बाईं ओरके पक्खेसे सटकर एक पलंग पड़ा था। उसपर लपेटे हुए बिछौनेने लोढ़का रूप धारण कर रक्खा था। दाईं ओरके पक्खेसे लगी दो तीन कुर्सियाँ पड़ीं थीं। बीचके रिक्त स्थानमें पलंगसे कुछ हटकर प्रवेशद्वारके खुले किवाड़ को छूता हुआ एक छोटा-सा टेबुल या चेयर डैस्क था। उसके सामने भी एक कुर्सी पड़ी थी। टेबुल लिखने-पढ़नेकी सामग्रीसे भरा था, परन्तु सब सामग्री बड़े ढंगसे सजाई गई थी। प्रवेश-द्वारके सामने ही भीतर जाने का द्वार था, उसमेंसे एक मझपौरिया दिखाई देती थी। सारा स्थान बहुत ही परिष्कृत, स्वच्छ और शान्त-कान्त दिखाई पड़ता था। तो भी पण्डित जीके आनेका समय निकट जानकर घरकी परिचारिका हाथमें गमछा लिये उसे कमरेमें इधर-उधर फटकार रही थी। ऐसा जान पड़ता था मानो यह एक विधि है, जिसे आवश्यक हो या न हो, पूरा करना ही चाहिये। ऐसी

समझदार और कुशल सेविकाएँ विरली ही होती हैं। बड़ी अपनाहटके साथ उसने हम लोगोंका स्वागत-सत्कार किया। उसकी मृत्यु होनेपर पण्डितजीने मुझे यथार्थ ही लिखा था—ऐसा जन अब मिलनेका नहीं।

तनिक देर पीछे उसने एक बार इधर-उधर देखा फिर उसारेसे नीचे उतरकर कुछ दूर तक पण्डितजीके आनेका मार्ग भी बुहार दिया। इतना करके मानो वह उस समयके कार्यसे निश्चिन्त हो गई। उसी समय पण्डितजी आते हुए दिखाई दिये। व्यक्तियोंकी विशिष्टता मानो उनके आगे चलती है। हम लोगोंने देखते ही समझ लिया, यही पण्डितजी हैं, यद्यपि बिना पगड़ीके मैं पण्डितोंका अनुमान ही न कर सकता था और उनके सिर पर टोपी थी। मैंने सन्ध्या समय दफ्तरसे लौटते हुए बहुतसे बाबुओंको झांसीमें ही देखा था। परन्तु पण्डितजी जैसा कोई बाबू न देखा था। जान पड़ा, 'बाबू' के वेशमें वे कोई 'साहब' हैं। विलायती साहब बहादुरसे तो हमलोग मिल ही चुके थे। उसका जो तेज था वह बहुत कुछ उसके अधिकारके कारण था, पण्डितजीका प्रताप सर्वथा व्यक्तिगत। हम लोग ससम्भ्रम उठ खड़े हुए। जाड़ेके दिन थे। वे हलके कत्थई रङ्गका नीचा ऊनी कोट या अचकन पहने थे और ऊनी ही सफ़ेद फलालैनका पतलून जैसा पाजामा। बांयें हाथमें कुछ कागद-पत्र लिये थे, दायेंमें छड़ी। दफ्तरसे लौटनेवालोंके विपरीत अनातुर धीर गतिसे पैदल आ रहे थे। ऐसे, मानो अभी सवारीसे उतरे हों आफ़िस दूर न था और पैदल आने-जानेसे वे छोटे नहीं होते थे, क्योंकि स्वभावतः बड़े थे। झूठे सम्मानके पीछे वे टहलनेके सुयोगसे वंचित क्यों होते जब सच्चा सम्मान उन्हें सुलभ था। ऊँचे ललाटके नीचे घनी और मोटी भौहें उसके अनुरूप ही थीं। उनकी छायामें विशेष चमकती हुई आँखें बड़ी न होने पर भी तेजसे भरी दिखाई देती थीं। पण्डितजी वेश-भूषासे सुसंस्कृत आकृतिसे गौरवशाली और प्रकृतिसे गम्भीर तथा चिन्तनशील जान पड़ते थे। हम लोगोंका प्रणाम स्वीकार कर और हमपर

एक दृष्टि डालकर वे कमरेके भीतर जाकर ही रुके। वहां इधर-उधर देख कर और तुरन्त ही 'आइये' कहकर उन्होंने हमें भीतर बुलाया। जबतक हम कमरेमें पहुँचे तब तक छड़ी और कागद-पत्र यथास्थान रखकर उन्होंने अपनी टाइमपीस घड़ी उठा ली थी और उसमें ताली देना आरम्भ कर दिया था। वे बड़े ही नियमबद्ध थे और सम्भवतः आफिससे लौटकर घड़ी कूकनेका समय उन्होंने बाँध रक्खा था।

"बैठिए" सुनकर भी हमलोग खड़े ही रहे। हमारा भाव समझकर घड़ी रखते हुए वे पलंग पर बैठ गये। सामनेकी कुर्सियोंकी ओर हाथ बढ़ाते हुए फिर स्निग्ध स्वरमें बोले—बैठिए। हमलोगोंके नाम और परिचयसे वे कुछ आकर्षितसे हुए और हाल ही में हमें पितृहीन हुआ सुनकर सहानुभूति प्रकट करने लगे। पिताजीकी अनन्य भक्तिकी चर्चाके प्रसंगमें उन्होंने यह भी पूछा कि आपलोग किस सम्प्रदायके अनुयायी हैं। 'विशिष्टाद्वैत' सुनकर बोले—हाँ। बहुत दिन पीछे प्रसिद्ध विद्वान् माननीय 'बार्हस्पत्य'जीसे जब मैं पहली बार मिला तब उन्होंने भी मुझसे यही पूछा था और उत्तर सुनकर कहा था, हम विशिष्टाद्वैत मतके नहीं हैं पर अच्छा उसीको मानते हैं। यह कहकर वे मुसकराने लगे थे। मैं भी उन्हींका अनुसरण करके हँस गया था। पण्डितजीने 'हाँ' कहते हुए अपना सम्प्रदाय भी बताया था, सम्भवतः वल्लभ। इसी संबन्धमें उन्होंने एक बार कहा था, हमारे पिता कुछ लिखनेके पहले लिखा करते थे—'श्रीलाड़लेश्वराय नमः'। परन्तु अब हम देखते हैं यह 'लाड़ले' और 'ईश्वर' का संधि-संयोग ही ठीक नहीं है।

पण्डितजीसे हम लोगोंकी बात-चीत आरम्भ ही हुई थी, इतनेमें भीतरसे एक सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट बिल्ली आई और उछलकर पण्डितजीकी गोदमें आ बैठी। उनके कण्ठस्वरसे उन्हें आया जान कर ही वह भीतरसे दौड़ी आई थी। पशु-पक्षी मैंने भी पाले हैं, परन्तु पली बिल्ली मैंने पहले-पहल

वहीं देखी थी। मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। मैंने देखा, पण्डितजी धीरे-धीरे उस पर हाथ फेर रहे हैं और वह हर्ष और गर्वसे एक असाधारण शब्द कर रही है। जो लोग पक्के गानेसे चिढ़कर उसे बिल्लियोंका लड़ाना कहते हैं, वे कहीं उस बिल्लीका शब्द सुनते तो जानते बिल्लियां भी स्नेह में कैसा प्यारा बोलती हैं। पण्डितजीने पशु-पक्षियोंकी चेष्टाओं पर 'सरस्वती'में एक लेख लिखा था। मुझे ठीक स्मरण नहीं, इस बिल्लीको देखकर मुझे उसका ध्यान आ गया था अथवा उसे देखकर इसका।

परन्तु जिस उद्देश्यको लेकर मैं पण्डितजीके यहाँ गया था उसके विषयमें कुछ कहनेका मुझे साहस ही न हुआ। मेरा सारा उत्साह न जानें कहाँ चला गया। मेरे अग्रजने प्रसंग चलाकर एक बार कहा भी कि ये भी कुछ कविता बनाते हैं। 'बड़ी अच्छी बात है' कहकर पण्डितजीने मेरी ओर देखा। मैं तो कुछ नहीं, कुछ नहीं, कह कर संकोचसे सिकुड़-सा गया। मुझे विपत्तिमें पड़ा देखकर फिर उन्होंने कुछ नहीं कहा। कुछ कहनेके लिए मैंने कहा—हम लोग तो सबेरे ही आने वाले थे, परन्तु सुना कि सन्ध्याको ही आपसे भेंट होती है, इसलिए इस समय सेवामें उपस्थित हुए हैं। वे हँसकर बोले—हाँ, सबेरे हम 'सरस्वती' का काम करते हैं और कुछ लेख आदि लिखते हैं। फिर अवकाश नहीं पाते। परन्तु जब आप इतनी दूरसे आये हैं तब क्या हम उस समय भी आपसे न मिलते। कभी झाँसी आया कीजिये और सुविधा हो तो मिला कीजिये।

उनका अधिक समय लेना अपराध करना था। रोकने पर भी हम लोगोंको विदा करने वे बाहर आये। आगतका स्वागत सभी करते हैं, परन्तु अपने छोटोंके प्रति भी उनका सदा ऐसा ही उदार व्यवहार रहा।

अपने पद्योंके विषयमें प्रत्यक्ष कुछ कहनेकी अपेक्षा पत्र-व्यवहार करने में ही मुझे सुविधा दिखाई पड़ी। वस्तुतः उनके प्रभावसे मैं अभिभूत हो

गया। पीछे न जाने कितनी बार उनकी सेवामें उपस्थित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, वे भी कृपाकर एक बार यहाँ पधारे, परन्तु वैसा आतंक कभी नहीं जान पड़ा। इसके विरुद्ध जैसे-जैसे निकटसे उनका परिचय मिलता गया, वैसे-वैसे उनकी सदयता और सहृदयताका ही अधिकाधिक अनुभव होता रहा। अपने कर्तव्यमें ही वे कठोर प्रतीत होते थे, आत्म-सम्मानका प्रश्न आ जाने पर उनमें उग्रता भी आ जाती थी, अन्यथा उनका-सा कोमल हृदय दुर्लभ ही है। एक बार वाद-विवादमें दूसरे पक्षने लिखा—यह विवाद व्यर्थ है। आप तो ब्राह्मण हैं, आपको क्षमा नहीं छोड़नी चाहिये। पण्डितजीने उत्तरमें लिखा—हमने जो आरोप लगाये हैं उन्हें व्यर्थ कहनेसे काम न चलेगा। या तो कहिये वे झूठे हैं, हम आपसे क्षमा याचना करेंगे या उनके लिए खेद प्रकट कीजिये। उस समय हम आपको हृदयसे क्षमा न कर दें तो ब्राह्मण नहीं।

उनकी वैसी वेश-भूषा भी फिर मैंने नहीं देखी। एक बार पैण्टके साथ उन्हें वण्डा कोट पहने देखकर तो ऐसा लगा, जैसे यह उनके अनुरूप न हो। इधर प्रायः कुरता और धोती ही वे पहना करते थे और यह वेश उन्हें बहुत सोहाता भी था। अभिनन्दनके अवसर पर भी वे इसी परिच्छदमें थे। अस्तु।

उस दिन लौटकर मुझे कुछ आत्मग्लानि-सी हुई कि मैं क्यों इतना हतप्रभ हो गया कि अपनी बात भी उनसे न कह सका। और, झूठ क्यों कहूँ, उनके प्रति कुछ ईर्ष्या भी मनमें उत्पन्न हो गई। परन्तु 'सरस्वती' में नाम छपनेका लोभ प्रबल था। आशा भी बलवती थी। कुछ दिन पीछे मैंने एक रचना भेज ही दी और उत्सुकतासे मैं उनके पत्रकी प्रतीक्षा करने लगा। मुझे स्मरण नहीं, इतने लंबे समयमें भी, पण्डितजीने मेरे किसी पत्रका उत्तर देनेमें विलंब किया हो। इतनी तत्परता मैंने और किसीके पत्र-व्यव-

हारमें नहीं पाई। मैंने भी बहुत दिन उनका अनुकरण करनेकी चेष्टा की, परन्तु अन्तमें मैं हार गया और अब तो शरीर और मन प्रकृतिस्थ न रहनेसे एक आध पत्र लिखना भी भारी हो उठा है। परन्तु पण्डितजी वृद्ध और क्षीण होने पर भी अन्त तक अपना नियम निभाते रहे, कितनी दृढ़ता थी उनमें।

यथासमय उनका उत्तर आ गया—"आपकी कविता पुरानी भाषामें लिखी गई है। 'सरस्वती' में हम बोल-चालकी भाषामें ही लिखी गई कविताएँ छापना पसन्द करते हैं।" राय कृष्णदास जैसे बन्धुके संसर्गसे भी जो एक चिट भी यत्नसे छाँट कर रखते हैं, मैं पत्रोंके संग्रहमें उदासीन ही हूँ। इसके लिए समय-समय पर मुझे अनुताप भी हुआ है। इसी प्रकार डायरी न रखनेसे प्रसंगवश अथवा अचानक उठे हुए कितने विचार किंवा भाव भी मुझे खो देने पड़े हैं। परन्तु पण्डितजीके पत्र न जाने कैसे मैं आरंभसे ही रखता रहा। कुछ प्रारम्भिक पत्रोंकी एक गिड्डी संभवतः कहीं ऐसी सुरक्षित रक्खी है कि इस समय मुझे भी नहीं मिल रही है! ऊपर मैंने जिस पत्रका उद्धरण दिया है, संभव है, उसमें शब्दोंका हेर-फेर हो, किन्तु बात वही है।

'बोल-चालकी भाषा' अर्थात् 'खड़ी बोली' और 'पुरानी भाषा' अर्थात् 'ब्रजभाषा।' पाठक ही समझ लें, मेरे मनमें अपनी रचनाकी अस्वीकृति खली या ब्रजभाषाकी उपेक्षा। मन कुछ विद्रोही था ही, आशा भी पूरी न हुई। अब क्या था, एक कड़ा-सा पत्र लिख दिया। एक बात सुनी थी कि शेख़ सादी साहबको फ़ारसी भाषाकी मधुरताका बड़ा अभिमान था। एक बार वे यहाँ आये। ब्रजभाषाकी प्रशंसा सुनकर उन्होंने नाक सिकोड़ी और भौंह चढ़ाई। घूमते-घूमते वे ब्रजमें पहुँचे। वहाँ मार्गमें पहले-पहल उन्होंने एक छोटी-सी लड़कीकी बात सुनी। वह अपनी मातासे

कह रही थी—'मायरी माय, मग चल्यौ न जाय, साँकरी गली, पाय काँकरी गड़तु है।' इस बातका संकेत भी मैंने अपने पत्रमें कर दिया और समझ लिया कि बदला ले लिया। परन्तु उस पत्रका कोई उत्तर न मिला। भगवान् ही जाने, इसे मैं अपनी जीत समझा या अपने प्रहारको सर्वथा निष्फल समझ कर और भी हताश हो गया। प्रतिघात सह लिया जा सकता है किन्तु आघातका व्यर्थ होना प्रतिघातसे भी कठोर होता है। तथापि मेरी क्षुद्रता का वे क्या उत्तर देते? मैंने धृष्टतापूर्वक एक पत्र और भी इस सम्बन्धमें भेजा। वह वैसा ही लौट आया अथवा लौटा दिया गया।

इस बीच कलकत्तेके 'वैश्योपकारक' मासिक पत्रमें मेरे पद्य छपने लगे थे। इससे मुझे कुछ अभिमान भी हो गया था। परन्तु हिन्दीकी एक मात्र प्रतिष्ठित पत्रिका 'सरस्वती' थी। मन मेरा उधर ही लगा था। झख मार कर खड़ी बोलीके नामसे 'हेमन्त' शीर्षक कुछ पद्य लिखे। उन्हीं दिनों स्वर्गीय राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' की 'शरद' नामकी एक कविता 'सरस्वती' में छपी थी। वह पुरानी भाषामें ही थी। 'शरद्' छपी तो 'हेमन्त' भी छप सकता है। उसे भेजते हुए मैंने निर्लज्जतापूर्वक इतना और लिख दिया कि प्रसन्नताकी बात है, अब 'पुरानी भाषा' के सम्बन्धमें आपका वह विचार बदला है। जिस दिन उत्तर मिलना चाहिए था, उत्सुकतापूर्वक मैं स्वयं डाकघर पहुँचा। उनका उत्तर पोस्टकार्डके रूपमें उपस्थित था। धड़कते हृदयसे पढ़ा। लिखा था—'आपकी कविता मिली। राय साहबकी कविता अच्छी होनेसे हमने छापी है।' अब समझमें आया कि नई-पुरानी भाषा का तो एक बहाना था, मेरी कविता अच्छी न होनेसे न छप सकी थी। यह उस समय भी न समझमें आया कि मेरी रचना अच्छी न थी, फिर भी उन्होंने उसे बुरा न बताकर भाषाकी बात कह कर कितनी शिष्टतासे मुझे उत्तर दिया, यद्यपि यह ठीक था कि बोल-चालकी भाषाकी कविताके ही वे पक्षपाती थे और उसीका प्रचार भी कर रहे थे। जो हो, मेरा जी बैठ

गया। 'सरस्वती' आई पर 'हेमन्त' न आया। वह क्यों नहीं आया, आवेगा भी या नहीं, यह पूछनेका भी धीरज न रहा। कन्नौजसे 'मोहिनी' नामकी एक समाचार-पत्रिका निकलती थी। उसीमें छपनेके लिए मैंने 'हेमन्त' भेज दिया और अगले सप्ताह ही वह छपकर आ गया। एक द्विवेदीजी न सही तो दूसरे गुणग्राहक तो विद्यमान हैं, यों मैंने मन समझानेकी चेष्टा की। मनने मान भी लिया, कारण, अपमान भी उसीने माना था। तथापि उसके एक कोनेसे यह शब्द उठे बिना न रहा कि—हाय सरस्वती।

नये वर्षकी 'सरस्वती' आई, नई ही सज-धज से। अब उसका रूप-रङ्ग और भी सुन्दर हो गया। देखकर जी ललच गया। परन्तु जिस बात की आशा भी न थी उस 'हेमन्त' को भी वह ले आई। मेरा रोम-रोम पुलक उठा। जिस रूपमें मैंने उसे भेजा था उससे दूसरी ही वस्तु वह दिखाई पड़ती थी, बाहरसे ही नहीं भीतरसे भी। पढ़ने पर मेरा आनन्द आश्चर्यमें बदल गया। इसमें तो इतना संशोधन और परिवर्धन हुआ था कि यह मेरी रचना ही नहीं कही जा सकती थी। कहाँ वह कंकाल और कहाँ यह मूर्ति! वह कितना विकृत और यह कितनी परिष्कृत। फिर भी शिल्पीके स्थानपर नाम तो मेरा ही छपा है। मुझे अपनी हीनता पर लज्जा आई और पण्डितजीकी उदारता देखकर श्रद्धासे मेरा मस्तक झुक गया। इतना परिश्रम उन्होंने किया और उसका फल मुझे दे डाला। यह तो मुझे पीछे ज्ञात हुआ कि मेरे ऐसे न जाने कितने लोग उनसे इस प्रकार उपकृत हुए हैं। नामकी अपेक्षा न रखकर काम करना साधारण बात नहीं, परन्तु काम आप करके नाम दूसरेका करना और भी असाधारण है। पण्डितजी अपने संपादकीय जीवन भर यही करते रहे। उनके तप और त्यागका मूल्य आँकना सहज नहीं। हिन्दीके प्रभविष्णु कवि स्वर्गीय नाथूराम शंकर शर्माने एक पत्रमें मुझे लिखा था—"सम्पादकजी बहुधा कविताओंमें संशोधन भी कर देते हैं। 'केरलकी तारा' नामकी कवितामें मैंने लिखा था—

"पीठ पर टपका पड़ा तो आँख मेरी खुल गई।
चार बूँदोंसे मिले मनकी लँगोटी धुल गई॥"

इसमें नीचेकी पंक्ति उन्होंने बदल कर छापी—

"विशद बूँदोंसे मिले मन मौज मिसरी घुल गई।"

लाभसे मेरा लोभ और भी बढ़ गया। कुछ दिन पीछे 'क्रोधाष्टक' नामक एक तुकबन्दी मैंने और भेज दी। उपद्रव सहनेकी भी एक सीमा होती है। इस बार क्षुब्ध होकर उन्होंने जो पत्र लिखा वह, इधर स्मृति विकृत होने पर भी, मुझे भली भाँति स्मरण है—

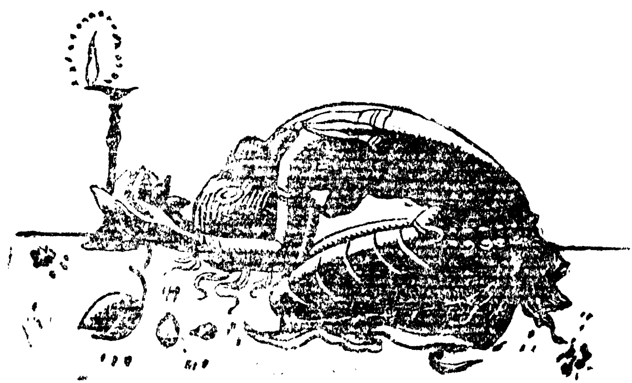
"हम लोग सिद्ध कवि नहीं। बहुत परिश्रम और विचारपूर्वक लिखने से ही हमारे पद्य पढ़ने योग्य बन पाते हैं। आप दो बातोंमेंसे एक भी नहीं करना चाहते। कुछ भी लिख कर उसे छपा देना ही आपका उद्देश्य जान पड़ता है। आपने 'क्रोधाष्टक' थोड़े ही समयमें लिखा होगा परन्तु उसे ठीक करनेमें हमारे चार घंटे लग गये। पहला ही पद्य लीजिए—

"होवे तुरन्त उनकी बलहीन काया।
जानें न वे तनिक भी अपना-पराया॥
होवें विवेक वर बुद्धि विहीन पापी।
रे क्रोध, जो जन करें तुझको कदापि॥"

क्या आप क्रोधको आशीर्वाद दे रहे हैं जो आपने ऐसी क्रियाओंका प्रयोग किया? इसे हम अवश्य 'सरस्वती' में छापेंगे, परन्तु आगेसे आप 'सरस्वती' के लिए लिखना चाहें तो इधर-उधर अपनी कविताएँ छपानेका विचार छोड़ दीजिये। जिस कविताको हम चाहें उसे छापेंगे। जिसे न चाहें उसे न कहीं दूसरी जगह छपाइए, न किसीको दिखाइए। तालेमें बन्द करके रखिये।"

रोष ही मेरे लिए परितोष बन गया। अयोग्य देखकर भी पण्डितजीने मुझे त्यागा नहीं, सदाके लिए अपना लिया। इसी पद्यमें मुझे बोल-चालकी भाषामें पद्य रचनेका 'गुर' मिल गया। बातें इतनी ही नहीं हैं। परन्तु आज मैं और कुछ न लिखकर अपने प्रभुसे यही प्रार्थना करता हूँ कि परलोकमें भी उनका-सा पथप्रदर्शक मुझे प्राप्त हो।

—मैथिलीशरण



द्विवेदीजी अपनी नज़रमें

[१]

निर्मलजीको स्लिपोंपर लिखी, ६ स्लिपें

निर्मलजी,

आपका पोस्टकार्ड मिला। प्रूफ देखकर आपने मुझपर बड़ी कृपा की। उचित समझिए तो साथके विज्ञापनको 'भारत'में किसी अच्छी जगह छाप दीजिए। मात्राएँ बहुत न टूटने पावें। अन्तमें आप मेरी तरफ़से अपने नोटमें, यह लिख दीजिए कि जिन पत्रोंने इस विषयमें कुछ लिखा हो वे कृपा करके मेरी इस विज्ञापनाको भी अपने पत्रमें छाप दें।

१३।५।३२] **म० प्र० द्विवेदी**

मेरी जन्म-तिथि वैशाख शुक्ल ४ संवत् १६२१ है। इस हिसाबसे ६ मई १६३२ को मैं ६८ वर्षका हो गया। अब मैंने उनहत्तरवें वर्षमें प्रवेश किया है। इस उपलक्ष्यमें मुझे मेरे अनेक मित्रों और हितैषियोंने बधाइयाँ दी हैं और खुशियाँ मनाई हैं। कितने ही पत्रों और तारों द्वारा मेरी शुभकामना की गई है। कई समाचार-पत्रों और सामयिक पुस्तकोंमें भी मेरा अभिनन्दन किया गया है। मुझपर कृपा करनेवाले सज्जनोंने कहीं-कहीं समुदाय रूपसे भी मेरी हितचिन्तना की है। इन सभी सज्जनों लेखकों, पत्र-प्रेषकों और अभिनन्दन करनेवालोंको मेरे शतशः प्रणाम। मैं उनके चरणों पर भक्तिभाव पूर्वक, अपना मस्तक झुकाता हूँ, मैं उन्हें अपना मातृ-पितृ-स्थानीय समझता हूँ, क्योंकि स्वाभाविकतया माता-पिता ही अपने बच्चेकी वर्षगाँठ मनाते हैं।

पिता तो मेरे विदेशवासी थे। बारह-तेरह वर्षकी उम्र तक मेरी माता ही ने मेरी वर्षगांठ मनाई थी। हर साल उस अवसर पर उसे जिस सुख और सन्तोष, तथा मुझे जिस कौतूहल और आनन्दकी प्राप्ति होती थी उसका स्मरण आज नया हो गया। इस स्मरणने मेरा कण्ठावरोध कर दिया और मेरे नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बरसा दिये। वर्षगांठके दिन मैं अपनी माँसे खाने, पीने और पहनने आदिकी अपनी अभिलषित चीज़ें मांगता था; और वह जहाँतक उसका वश चलता था, उनकी पूर्ति करती थी। इस उम्रमें—अपनी वर्तमान स्थितिमें—मुझे अब उन चीज़ोंकी चाह नहीं। अब तो मुझे एक और ही चीज़की चाह है। अतएव जिन उदारचरित महानुभावोंने मेरी वर्षगांठ मनाई या मुझे बधाई दी है, उनसे मैं वही चीज़ माँगना चाहता हूँ। वे सभी सज्जन हैं। सज्जन न होते तो मुझपर इतनी कृपा क्यों करते। उनसे मेरी मांग है—

> "सन्त सरल चित जगतहित जानि सुभाउ सनेहु।
> बाल विनय सुनि करि कृपा रामचरन - रति देहु॥"

इस समय मुझे इसीकी सबसे अधिक ज़रूरत है। आशा है, यदि वे मेरी अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति करा देनेके लिए परमात्मासे प्रार्थना करेंगे, तो उससे मेरा अवश्य ही कल्याण होगा।

"सर्वं नृजन्म मम निष्फलमेव याति"

किसी-किसीने ९ मई १९३२ को मेरी सरसठवीं ही वर्षगांठ मनाई है। जान पड़ता है, इन सज्जनोंके हृदयमें मेरे विषयके वात्सल्य भावकी मात्रा कुछ अधिक है। इसीसे उन्होंने मेरी उम्र एक वर्ष कम बता दी है। कौन माता-पिता या गुरुजन ऐसा होगा जो अपने प्रेम-भाजनकी उम्र कम बताकर उसके जीवनावधिको और भी आगे बढ़ा देनेकी चेष्टा न करेगा? अतएव इन महानुभावोंका मैं और भी अधिक कृतज्ञ हूँ।

हिन्दी-भाषा और साहित्यके सम्बन्धमें, पूर्वोक्त अवसरपर बहुत कुछ कहा गया है। मैंने यह किया, मैंने वह किया आदि। मेरा निवेदन है कि मैं इस प्रशंसाका पात्र नहीं। २२ वर्षोंतक रेलवेकी मुलाज़िमत करके जब मैंने रजत-शृंखलाएँ तोड़ीं तब मैंने अपनेको और किसी कामके योग्य ही न पाया। लाचार होकर, हिन्दी लिखकर मैंने अपनी और अपने आश्रितोंकी उदर-पूर्ति की। मेरे इस कामसे यदि हिन्दी साहित्यको कुछ लाभ पहुँचा हो तो आप उसे मेरे कामका आनुषङ्गिक फल समझ लीजिए। बस, इससे अधिक और कुछ नहीं। मेरे इस कामको मेरे मित्रों और हितैषियोंने जो विशेष महत्त्व दिया है वह एकमात्र उनकी उदारता और उनके हृदयकी महत्ताका सूचक है।

सज्जन स्वभावसे ही उदार और कृपालु होते हैं। वे तो अनधिकारियोंको भी अपनी दयाका पात्र समझते हैं :—

"सन्तस्त्वभाजनजनेष्वपि निर्निमित्तं
चित्तंवहन्ति करुणामृतसारसिद्धिम् ॥"

दौलतपुर, रायबरेली
१३।५।३२ } महावीरप्रसाद द्विवेदी

पं० श्रीधर पाठक

पं० श्रीधर पाठकका जन्म, आगरा ज़िलाके फ़िरोजाबाद परगने के जोंधरी ग्राममें माघ कृष्ण चतुर्दशी सं० १९१६ को हुआ। प्रारम्भमें इन्हें संस्कृत पढ़ाई गई। दस वर्षकी अवस्थामें यह संस्कृत बोलने लग गये थे। सन् १८७५ ई० में प्रवेशिका परीक्षा पास की। सन् १८८० ई० में एंट्रेंस पास किया।

सन् १८८१ ई० से नौकरी शुरू की। पहले कलकत्तेके सेंसस कमिश्नरके दफ़्तरमें नौकरी की। फिर शिमला गये। शिमलासे लौट कर प्रयागमें आ गये। यहाँ ज़्यादा दिनों तक बने रहे।

पं० श्रीधर पाठकमें काव्य-प्रतिभा प्रारम्भसे ही थी। संस्कृत, फ़ारसी और अंग्रेज़ी तीनों भाषाओं पर आपको अधिकार प्राप्त था। व्रजभाषा और हिन्दी भाषा दोनोंमें आप समान गतिसे कविता कर लेते थे। गोल्डस्मिथके तीन ग्रन्थोंका पद्यानुवाद आपने "एकान्तवासी योगी" "ऊजड़ ग्राम" और 'श्रान्त पथिक' नाम से किया। "काश्मीर-सुषमा" नामक प्रकृति पर इनका बहुत सुन्दर काव्य है। हिन्दीमें रोमांचक काव्य शैलीके आप जन्मदाता माने जाते हैं।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजी से आपका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। द्विवेदीजीसे पाठकजीका बहुत पत्र-व्यवहार भी हुआ। कुछ पत्र प्रयाग नगरपालिका-संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। उन्हींमें से महत्त्वपूर्ण पत्रोंको यहाँ दिया जाता है।

[पं० व्रजमोहन व्यासजी द्वारा, प्रयाग नगरपालिका संग्रहालयके सौजन्यसे]

[२]

झाँसी

१२ फरवरी १८९६

प्रिय महोदय,

बहुत दिनसे आपकी कौशल्यशालिनी लेखनीने कोई नूतन ग्रन्थ हिन्दी साहित्यके कोशमें नहीं स्थापन किया। आपका "ऊजड़ ग्राम" और "योगी" तो इतना ललित और स्वाभाविक हैं कि अनेक बार पढ़ने पर भी फिर-फिर पढ़नेको जी चाहा करता है। कहा भी है "क्षणं क्षणं यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः"। कथानक अच्छा न होनेसे "ऊजड़ ग्राम" उतना हृदयंगम नहीं जान पड़ता जितना "एकान्तवासी योगी" जान पड़ता है। फिर चाहे हमारी क्षुद्र बुद्धि ही का यह भ्रम हो। "पथिक"की वक्रता ऐसी स्वाभाविक रीतिसे प्रतिबिम्बित की गई है कि मूलसे भी हमारी समझमें कहीं बढ़के है। हम तो इसे बहुधा पढ़ते हैं और अपने मित्रोंसे भी (जिनमें कई एक केनिंग कालिजके छात्र हैं) उसे पढ़ाकर सुनते हैं। इलियट पैराडाइज लास्ट, इत्यादि और भी मनोहर काव्य अंगरेज़ीमें हैं। आप चाहेंगे तो उन्हें भी किसी विचित्र मीटरमें अनुवाद करके अपूर्व रसका आस्वादन हम सबको सुलभ कर देंगे।

पाँच-सात वर्ष हुए "हिन्दोस्थान" में हमने आपका किया हुआ ऋतुसंहारके शरदृतुका भाषान्तर पढ़ा था। क्या आपने एक ही सर्गका अनुवाद किया है अथवा समग्र पुस्तकका? हमने कारणवशात् लाला सीताराम बी० ए० कृत 'कुमारसंभव' भाषाकी एक विस्तृत समालोचना लिखी है। वह क्रमशः काशी पत्रिकामें छप रही है। १२ पृष्ठ निकल चुके हैं। उन्हींके

किये हुए ऋतुसंहारके अनुवादकी भी समालोचना लिखनेका विचार है। उनके अनुवादको एक उत्तम अनुवादके साथ कंपेयर करनेकी इच्छा है। क्षमा कीजिए कई जगह अंगरेज़ी शब्द आ गये। समय पर क्या आप अपना अनुवाद भेज सकेंगे। मैं उसे वापस कर दूँगा और किसी प्रकार नष्ट न होने पावेगा।

"काशके फूल दुकूल, खिले अरविंदनमें मुख सुन्दरताई।"
[काशांशुका विकचपद्‌ममनोजवक्त्रा]
और
"सोहत या ऋतुमें सरिता गजगामिनि कामिनि-सी रस बोरी।"
[मदं प्रयान्ति समदा प्रमदा इवाद्याः]

यह अभी तक हमारे हृदयमें चिह्नित हो रहे हैं।

ईश्वर आपको स्वस्थ रखे और, और भी ऐसे काव्य लिखनेकी शक्ति देवे यही उससे प्रार्थना है।

आपका
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[३]

समस्तीपुर
२४–८–०५

प्रिय मित्र,

२२ ता० का कृपापत्र मिला। आप 'सरस्वती'की लेख-प्रणाली निर्दोष देखना चाहते हैं यह हमारे लिए सौभाग्यकी बात है। मित्रोंका यह धर्म ही है। इसलिए हम आपके कृतज्ञ हैं।

"पापान्निवारयति योजयते हिताय"

इस नियमका पालन यदि मित्रने न किया तो वह मित्र ही नहीं। हम पुरानी प्रथाके सर्वतोभावसे प्रतिकूल नहीं। पर हम यह भी नहीं

कहते कि वह सर्वथा निर्दोष है। कोई-कोई पुरानी रचना ऐसी है जिसे देखकर घिन लगती है। बोलनेमें व्याकरणके नियमोंका यदि अनुसरण न किया जाय तो विशेष आक्षेपकी बात नहीं। पर लिखनेमें ऐसा होना अच्छा नहीं। संस्कृत क्यों अबतक निर्दोष बनी है? उसकी रचना व्याकरण के अनुसार होती है, इसलिए। पालि और प्राकृत आदि भाषाएँ क्यों लोप हो गईं? उनका व्याकरण निर्दोष नहीं। अतएव उनकी रचना भी निर्दोष नहीं। हिन्दीमें कोई अच्छा व्याकरण नहीं जिसे सब लोग मानें। इससे जिसके जी में जो आता है उसे ही वह लिखता है। यह भाषाका दुर्भाग्य है। इससे उसे कभी स्थिरता न प्राप्त होगी। अखबारोंमें हम ऐसे अनेक वाक्य देखते हैं जिनका Parsing ही नहीं हो सकता।

उदाहरणार्थ :—

उसने आज्ञा दी कि जिन दिनों गंगाजल गँदला रहे उन दिनों उसमें यह दवा दो ग्रेनके हिसाबसे डालकर साफ़ किया जावे।

इसमें "वह" शब्द अपेक्षित है। उसके बिना वाक्य सूना है। हम यह नहीं कहते कि सब कहीं कर्ता प्रकट रहे। कहीं-कहीं वह लुप्त भी रहता है। और उसके लुप्त रहनेसे वाक्यकी शोभा नहीं बिगड़ती। पर ऐसे स्थानमें नहीं। एक बात और भी है। सबकी रुचि और सबकी श्रुति-पटुता एक-सी नहीं होती। जिस वाक्यको आप मधुर और मनोहर समझेंगे, संभव है हमें वह वैसी न लगे। क्योंकि यह कुछ क़ायदेकी बात तो है नहीं, रुचि-वैचित्र्यकी बात है।

आपके पहले उदाहरणमें "अपने" के पहले "उसने" की हम ज़रूरत नहीं समझते पर "अपने" या "बनाने" के पहले "वह" की हम बड़ी ज़रूरत समझते हैं। व्याकरण भी "वह" माँगता है और हमारी रुचिके अनुसार रोचक भी। दूसरे उदाहरणमें "पर" के बाद तो नहीं परन्तु "नीचे" के बाद हम "उन्होंने" की ज़रूरत समझते हैं। सकर्मक और

अकर्मक क्रियाओंके कर्तृपदमें भेद होता है। यदि सब लेखक मिलकर इस भेदको दूर कर दें और इसका एक नियम बना लें तो हम भी उसे मंज़ूर कर लेंगे। तीसरे उदाहरणमें कर्ता "वह" का न होना नहीं खटकता। "चल जाय तो अच्छा है" कहना ही अच्छा लगता है।

हम मुहाविरेके विरोधी नहीं। परन्तु 'जब', 'तब', 'जिस समय', 'उस समय' आदि सम्बन्धी मुहाविरा ऐसा नहीं है जिसे सब मानते हों। काल-वाचक सर्वनामके जोड़में उसी तरहका सर्वनाम क्यों न हो?

'गया' की जगह 'हुआ' हो सकता है। इसमें हमे कोई एतराज़ नहीं। पर अर्थमें किंचित् भेद ज़रूर हो जाता है।

श्रीमदीय

महावीरप्रसाद

आज हम यहाँसे कानपुर वापस जाते हैं।

[४]

कानपुर

२८–४–०६

प्रिय मित्र,

कृपा-पत्र आया। आप हमसे अब कापी लिखाना चाहते हैं। सो नहीं होनेका। जैसा हम लिखेंगे वैसा ही आपको पढ़ना पड़ेगा। दफ़्तरमें भी तो बदख़त काग़ज़ आपको पढ़ने पड़ते होंगे।

आप क्या समझते हैं कि हम नीरोग रहते हैं। हमारी हालत तो शायद आपकीसे भी बुरी है। पर करें क्या—जिस स्थितिमें ईश्वर रक्खे उसीमें सन्तोषपूर्वक रहना चाहिए। और अपने कर्तव्य भी करने चाहिए। आप भी ऐसा ही कीजिए। हम तो यही कहेंगे। आप चाहे मानें या न मानें।

अच्छा किया आप भी ऐनक लगाने लगे। रोग और ऐनक दोनोंमें हमारी और आपकी सदृशता हो गई।

'सरस्वती'के मैनेजर न आये तो न सही। यदि कभी हम आवेंगे तो हम खुद ही आपके काश्मीरके फोटो ले लेंगे। पर सिर्फ़ फोटोसे क्या होगा। उनपर कुछ लिखना भी तो चाहिए।

फोटोका बहुवचन फोटो ही हो तो अच्छा। और कुछ अच्छा न लगेगा।

आशा है आप आनन्दपूर्वक हैं।

भवदीय

महावीरप्रसाद

[५]

कानपुर

२९—४—०६

प्रिय मित्र,

कृपा-पत्र आया। उससे जान पड़ता है आप उर्दू मिश्रित हिन्दीके विरोधी हैं। हमें स्मरण है आपने एक बार हमें लिखा था कि आपको 'भारतमित्र'की भाषा पसन्द है। परन्तु उसमें तो उर्दू-फ़ारसी शब्दोंकी और भी अधिक भरमार रहती है। 'सरस्वती' में कुछ लेख जानबूझकर उर्दू मिश्रित भाषामें लिखे जाते हैं। कारण यही है कि गवर्नमेंण्ट इन प्रान्तों-की भाषा एक करना चाहती है। इसीसे हिन्दी और उर्दू रीडरोंकी भाषा एक रक्खी गई है। 'सरस्वती' का प्रचार मदरसोंमें बहुत है। अतएव कोई कोई लेख मदरसोंके लड़कों और मुदर्रिसों ही के लाभके लिए लिखे जाते हैं। ठेठ हिन्दी या संस्कृत मिश्रित हिन्दीका आदर करनेवाले बहुत कम हैं। यदि सरस्वतीके खर्चका भार उनपर ही छोड़ दिया जाय तो उसका निक-लना ही बन्द हो जाय। परन्तु इससे आप यह न समझिए कि हम आपको

लेख लिखनेसे मना करते हैं। यदि आपके लेखसे हिन्दीका कुछ भी हित होनेकी आशा हो तो आप अवश्य लिखिए। हम उसे सिर आँखोंपर लेंगे। पर यदि किसीकी प्रणाली-विशेष पर आक्षेप न हो तो अच्छा। लेख ऐसा हो कि उसकी बातें सब पर घटित हो सकें। आपकी लेखनीसे आपको भी 'सरस्वती'के विरोधमें लेख अच्छा न लगेगा, क्योंकि इस तरहकी प्रणाली औरोंकी भी तो है। आप समझदार हैं, जो कुछ आप उचित समझेंगे वही करेंगे। प्रयागमें कुछ काम है। १०-५ दिनमें वहाँ जानेका इरादा है। यदि जाना हुआ तो आपसे भी मिल लेंगे।

विनयावनत

महावीरप्रसाद



बाबू राधाकृष्णदास

बा० राधाकृष्णदासजीका जन्म श्रावण सुदी पूर्णिमा संवत् १९२२ को हुआ। इनके पिताका नाम कल्याणदास था। जब ये १० महीनेके थे, तभी इनके पिताकी मृत्यु हो गई। इसके बाद भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजीने इनको अपने घर बुला लिया। ये भारतेन्दुके फुफेरे भाई थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीके यहाँ ही इनका लालन-पालन हुआ। घर पर ही इन्होंने विद्याभ्यास किया। संस्कृत, बंगला, फ़ारसी, गुजराती, हिन्दीका अच्छा अभ्यास किया। मैट्रिक तक अंगरेज़ीका अध्ययन किया। ये प्रारम्भसे ही साहित्यिक रुचिके थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीने इनको साहित्यकी प्रेरणा भी दी। इन्होंने २५ ग्रंथों की रचना की। "दुःखिनी बाला", "निस्सहाय हिन्दू", "महारानी-पद्मावती", "प्रताप नाटक" आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

नागरीप्रचारिणी सभा काशीके निर्माणमें बा० राधाकृष्णदास का मुख्य हाथ था। यह उसके प्रमुख नेताओंमें से एक थे। काशी के अग्रवाल समाजके चौधरी भी थे। ४२ वर्षकी अवस्थामें ता० २ अप्रैल सन् १९०७ को आपकी मृत्यु हो गई।

[६]

झांसी

१२ अगस्त ९८

महोदय,

कार्ड आपका आया—उस काग़ज़को कृपापूर्वक वापस कर दीजिए—आपको स्मरण होगा, हमने लिखा था कि इन पद्योंको देखिए और ठीक हों तो सभाको सुनाइए—कर्त्ताधर्त्ता तो आप ही हैं यदि छपनेके योग्य न थीं तो कहिए तो सही कि फिर आपने सभामें उसे ले जाने और सुनानेका परिश्रम क्यों किया—क्या गलहस्त दिलाना ही आपको इष्ट था—ऐसा तो कदापि न होगा—आप स्वयं लौटा देते तो हमें बहुत सन्तोष होता—आप अपनी सभाके नियमोंसे बख़ूबी वाक़िफ़ हैं, फिर क्यों आपने ऐसा किया, नहीं मालूम :—

"दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालैर्दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्ध्या।
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने वसन्ति॥"

अंग्रेज़ी काव्यका छन्दोबद्ध अनुवाद भेजनेके लिए आपने आज्ञा दी तो शिरसाधार्य है परन्तु मुश्किल तो यह है कि अमुक कविताको आप और आपकी सभा "उत्तम, उपदेशमय और हृदयग्राहिणी" समझेगी और अमुकको न समझेगी, इतना ही तो हमको समझ नहीं पड़ता—ख़ैर, हम आपकी आज्ञा-पालन करनेकी कोशिश करेंगे—परन्तु कविके अभिलषित विषय पर ही उसकी कविता अच्छी होती है यह हमारा मत है—सभाका अलबत्ते यह मत न होगा यह हम जानते ही हैं।

भवदीय

महावीर

[७]

झांसी

२४-१०-१९०३

श्रीमान् बाबूसाहब,

आपका 'रहिमन-विलास' हम आज देखते थे। उसका ८५वां पद्य बिचारणीय है। दाँत, केश, नख, मनुज अपने ही स्थानपर शोभा पाते हैं यह समझमें नहीं आया—मनुजकी शोभा यदि अपने ही घरमें हुई तो कोई प्रशंसाकी बात नहीं—नखसे कोई शोभा अंगुलियोंकी नहीं होगी—दाँत, केश दूसरी जगह जा नहीं सकते—काटनेसे उनकी गिनती कूड़ेमें होगी।

भवदीय

महावीर

[८]

झांसी

१२-१-१९०४

प्रिय महाशय,

कृपा-कार्ड आया। यदि हम आपकी कोई सहायता कर सकेंगे तो हम प्रसन्नतापूर्वक करेंगे, परन्तु इस समय हमारे पास एक ऐसा काम आ गया है कि शायद कई महीने तक हमको सिर उठानेकी फुरसत न मिलेगी—इसलिए कविताके लिए आप हमको क्षमा करें—एकआध लेख हमारे पास चतुर्भाषीके योग्य अधलिखे रक्खे हैं उनको हम, आवश्यकता पड़ने पर, समाप्त करके आपको भेजेंगे।

भवदीय

महावीर

पं० पद्मसिंह शर्मा

पं० पद्मसिंह शर्माका जन्म बिजनौर ज़िलेके नायक नगला ग्राम में सं० १९३३ की फाल्गुन सुदी १२ को हुआ। उनके पिताका नाम उमरावसिंह था। ये भूमिहार थे।

खेती और ज़मीन्दारी इनका पारिवारिक पेशा था। १२ वर्ष की उम्रसे विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। प्रारम्भमें उर्दू और फारसी का अध्ययन किया। फिर पं० भीमसेन शर्माकी संस्कृत पाठशाला में संस्कृतका अध्ययन किया। सं० १९६१ में उत्तर प्रदेशकी आर्य प्रतिनिधि सभाके उपदेशक नियुक्त हुए। इसके बाद महात्मा मुंशी-राम [स्वामी श्रद्धानन्द] के साप्ताहिक पत्र "सत्यवादी" के सम्पादकीय विभागमें काम करने लगे। १९६५ में अजमेरके "परोपकारी" और "अनाथ-रक्षक" का सम्पादन किया। इसके बाद आठ वर्ष तक ज्वालापुर महाविद्यालयमें काम किये। सं १९७६ में काशीके ज्ञानमण्डल कार्यालयमें पुस्तक-प्रकाशन विभागमें आ गये। यहीं उनकी बिहारी-सतसईके भूमिका-भागका प्रकाशन हुआ। इसी समय सतसई संहार पर "सरस्वती" में उनके लेख प्रकाशित हुए।

'बिहारी सतसई' पर आपको मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ। सं० १९८५ में मुजफ्फरपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति हुए। सं० १९८९ में हिन्दुस्तानी एकेडमीमें व्याख्यान दिया। सं० १९८९ में प्लेग रोगसे आपकी मृत्यु हो गई।

पं० पद्मसिंह शर्माका पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीसे बहुत घना सम्बन्ध था। द्विवेदीजीसे आपका बहुत पत्र-व्यवहार हुआ था।

[९]

कानपुर

१८–१०–०५

प्रिय पण्डितजी

कृपा-पत्र आया। यह रसीद, पारसलमें १–तरुणोपदेश, २—सोहागरात, ३–शिक्षा-सरोज ६ भाग, ४–देशोपालम्भ (कविता) हैं, पहुँच लिखिए। १–का जीर्णोद्धार करके २–के साथ पढ़ चुकने पर वापिस कीजिएगा, ३–आपके लिए है।

कहीं-कहीं एकआध किताबमें हमने पेन्सिलसे संशोधन किये हैं, वे मिट सकते हैं, रीडर्स हमारे पास और नहीं, सिर्फ़ वही जोड़ा है, जो हमने आपको भेजा है।

हमारे जीवन-चरितमें क्या रक्खा है? आपको जो हमारा चरित्र (!) बहुत ही पसन्द हो तो आप ही लिखिएगा। इस संसारमें हमारे आगे-पीछे कोई नहीं है। वसीयतनामा लिखकर राही मुल्क़ बका होनेके लिए तैयार बैठे हैं, अपने चरितके नोटस् लिखनेको हमें फ़ुरसत नहीं है।

ठाकुर शिवरत्नसिंहका समाचार सुनकर बड़ा आनन्द हुआ। ऐसे स्वाधीनचेता, विद्या-व्यसनी और देशभक्त सज्जनोंको ईश्वर चिरायु करें।

देशोपालम्भ सिर्फ़ आपके देखनेके लिए है, प्रकाशके लिए नहीं।

श्रीमदीय

महावीरप्रसाद

पुनश्च—

माफ़ कीजिए हमने इस टुकड़े ही पर आपको यह पत्र लिख दिया।

म० प्र०

[१०]

कानपुर

११-१२-०५

बहुविध प्रणामानन्तर निवेदन—

७ तारीख़का कृपापत्र मिला।

पहले पत्रका उत्तर जालन्धर गया है, न मिला हो तो मँगा लीजिएगा। पुस्तकें मिलीं, टोपी भी, 'मेनी थैंक्स'।

गुप्ताजीकी बाबत हम पहले पत्रमें आपको लिख चुके हैं।

हम इनके मसख़रेपन और कुटिल कटाक्षोंकी ओर दृक्पात नहीं करते आये।

पर कई आदमियोंकी राय है कि व्याकरणका विषय महत्त्वका है।

इससे इस दफ़ा जवाब देना चाहिए।

भवदीय

म० प्र० द्विवेदी

[११]

जूही, कानपुर

११-१-०६

प्रणाम!

कृपा-पत्र मिला। हमने तो लाला मुंशीरामको लिखा था कि क्यों आपने हमारे पत्रोंका जवाब नहीं दिया, और अब आप कहाँ हैं? एक कार्ड हमने जालन्धरको आपके नाम भेजा है, उसे मँगा लीजिए और उसी को प्रयाग भेजकर हमारी दोनों रीडर्स इण्डियन प्रेससे मँगा लीजिए— उन्होंने कृपा करके अपनी प्रतियोंमेंसे दो प्रतियाँ आपको देनेका वादा किया है। हमने कोई २०-२५ पृष्ठमें वेंकटेश्वर और भारत-मित्रके (दो अंकोंके) आक्षेपोंका उत्तर लिखा था, पर प्रयागमें इस विषयका जो

विचार हुआ उसमें यह स्थिर हुआ कि ····को बातका उत्तर न दिया जाय।

हमने दो-एक व्यङ्ग्यपूर्ण और हास्यरसानुयायी गद्य-पद्यमय लेख लिखे हैं, उनका सम्बन्ध ऐसे लोगोंकी समालोचनाओंसे है, जो कुछ नहीं जानते पर सब कुछ जाननेका दावा करते हैं। अगर सलाह हुई तो उनको शायद हम क्रम-क्रमसे प्रकाशित कर दें। भाषा और व्याकरण पर एक और लेख लिखनेका हमारा इरादा है। उसमें भी हम हरिश्चन्द्र की त्रुटियाँ दिखलायेंगे, और अच्छी तरह दिखलायेंगे। काशीके कई पण्डितोंने अनस्थिरताको साधु बतलाया। संस्कृत पत्रिकाके सम्पादक अप्पा शास्त्री विद्यावागीशने तो कई तरहसे उसकी साधुता साबित की।

आप कब तक जालन्धर वापस जाइएगा। आपने जो वन्देमातरम् वाले श्लोक भिजवाये थे, उनका निर्णय हमने लिख भेजा था, आप हमारा सीमासे अधिक गौरव करते हैं। हम आपके सामने ऐसे मामलोंमें कोई चीज़ नहीं। हमारा निर्णय पसन्द आया या नहीं।

श्रीमदीय

महावीरप्रसाद

[१२]

कानपुर

२२-१-०६

प्रणाम !

२० ता० का कृपा-पत्र मिला—भाषा और व्याकरण पर एक और लेख लिखा है—उसमें कुछ आक्षेपोंका जवाब भी है, यहाँ सब लोगोंकी सलाह हुई तो छपेगा।

वन्देमातरम् वाले श्लोक हमने कांगड़ी हरिद्वार भेजे थे, ला०

मुंशीरामके पास—उन्हींने हमको भेजा था, इससे हमारा फैसिला भी उन्हींके पास गया।

ठाकुर साहबकी पुस्तकें अभी रक्खी हैं, शिक्षा हमें अधिक पसन्द है। पहले उसीके लिखनेका विचार है। यह सुनकर बड़ी खुशी हुई कि आपको नौकरीकी विशेष परवा नहीं। फिर क्या ज़रूरत जालन्धर जानेकी? इस समय समालोचनाओंकी ज्वाला जल रही है, कुछ दिन विद्यालयकी पुस्तकोंकी बात नई न कीजिए—आप चाहें तो कुछ तब तक लिख रक्खें, मगर, हमसे अभी कुछ न लिखाइए, नहीं तो प्रलय हो जानेका डर है, आपको नूह बनना पड़ेगा।

भवदीय

महावीरप्रसाद

[१३]

कानपुर

२–२–०६

प्रणाम!

३० का पत्र मिला—आपने जो अनुमान किया ठीक है—नलदम्भके बारेमें लिखना ज़रूर चाहिए था, न लिखना हमारी भूल है, खैर अब लिख देंगे, पाञ्चालके सम्बन्धके लेख हमें पढ़ने हैं। फ़ुरसत मिले तो इकट्ठे करके पढ़ें—बहुत करके आप हीका अनुमान ठीक होगा। इंगलैंड और अमेरिकासे हमारे पास दो-एक ऐसी सामयिक पुस्तकें आती हैं, जिनमें ऐसी-ऐसी अद्भुत-अद्भुत बातें रहती हैं "सच है या झूठ राम जाने"। रीडर्स पहुँच जायें तब लिखिएगा—और सब कुशल है। बंगवासीमें किसीने "आत्मारामकी टें टें" लिखना शुरू किया है।

भवदीय

म० प्र०

[१४]

फ़तेहपुर
४–६–०६

प्रियवर,

कृपापत्र मिला। दो चार दिनके लिए यहाँ हम कृत्रिम हीरावालोंसे मिलने आये हैं, आपकी राय हमने उनको सुनाकर खुश किया और, और ऐसे ही लेख लिखनेके लिए उत्तेजित भी किया।

चाँदनीका पता-ठिकाना मालूम नहीं, बिना पताके वह लेख हमारे पास आया था, लिखना तो पुरुषका ऐसा मालूम होता था, पर सम्भव है वह स्त्री ही का हो।

नाथूरामजीकी कविताकी कई सज्जनोंने तारीफ़ की है, वे सचमुच सुकवि हैं, हमने उनसे और भी कविता भेजनेके लिए प्रार्थना की है। आपका साधुवाद भी हम उन्हें भेजते हैं। हाँ, ये वही "शंकरसरोज" वाले हैं, बड़े सज्जन जान पड़ते हैं।

हिन्दी-ग्रन्थ-मालाका पहला अंक निकल गया, शिक्षाका अनुवाद शुरू क्या, आधा हो गया। देखने पर आपको मालूम होगा कि उसका ढंग कैसा है, उर्दूवालेसे अच्छा नहीं तो बुरा भी न होगा। शिक्षाका संस्कृत अनुवाद मैसूरमें किसीने किया है पर अधिक पता नहीं चला। मैसूर प्रेसवालेने लिख भेजा, कोई कापी शेष नहीं।

श्रीहर्ष, मोमिन और ग़ालिबके एकार्थबोधक पद्य ज़रूर देंगे, दया करके हमारे लिए एक छोटा-सा नोट भेज दीजिए और उसीमें इन तीनों पद्योंका तारतम्य दिखला दीजिए, इतना काम हमारे लिए नहीं तो "सरस्वती" के लिए कीजिए, हमको बड़ा काम है।

लाला देवराजके सिवा और लोगोंने भी "सरस्वती" को लूटना शुरू

किया है। बम्बईके कई गुजराती अखबार उसके लेख गड़प कर रहे हैं। पटनेके विद्या-विनोदने भी कृपा की है।

भवदीय
महावीर

[१५]

कानपुर
१७-६-०६

प्रिय पण्डितजी प्रणाम,

कृपा-पत्र मिला। पं० भीमसेनजीके श्लोक हम 'सरस्वती'में धन्यवाद-पूर्वक प्रकाशित करेंगे, दारिद्र्यके विषयमें चारुदत्त और मोमिनकी उक्ति खूब मिलती है।

वह नोट हमने लिख लिया है, आप कष्ट न उठाइएगा।

"नोटके लिए अभी कुछ उपयुक्त सूझा नहीं क्या लिखूँ"

वाह, क्या आप भी बहानेबाजी करने लगे ? साफ़ इन्कार लिखा कीजिए।

दो-चार दिनमें एक महीनेके लिए अपने गाँव जानेका इरादा है।

आमकी फ़सल आ गई—

भवदीय
महावीरप्रसाद

[१६]

दौलतपुर
२६-७-०६

नमो नमः,

काव्यमालाके १३ वें गुच्छकके ८ वें पृष्ठ पर रामभद्र दीक्षितकृत "वर्णमालास्तोत्र" का यह श्लोक पढ़िए :—

**"सर्गस्थितिप्रलयकर्म्मसु चोदयन्ती माया गुणत्रयमयी जगतो भवन्तम्।
ब्रह्मेति विष्णुरिति रुद्र इति वृथा ते, नाम प्रभो दिशति चित्रमजन्मनोऽपि"॥**

इसमें "वृथा" शब्दका "वृ" संयुक्त अक्षर क्यों माना गया है, क्या "ॠ" व्यञ्जन भी कभी माना जाता है, अथवा, वृथा क्या कभी व्रथा भी लिखा जाता है।

इस विषयमें एक महाराष्ट्र पण्डितसे हमसे विवाद हो चुका है।

क्या आपने "समयमातृका" और "कुट्टनीमतम्" काव्य देखे हैं ?

भवदीय
म० प्र०

[१७]

दौलतपुर
२६–७–०६

प्रिय पण्डितजी,

१६ ता० का कृपाकार्ड मिला, सरस्वतीको लोग बीच ही में रोक लेते हैं, प्रेसवालोंका अपराध नहीं, जूनकी एक संख्या हमारे पास थी, उसे आज आपको भेजते हैं।

'आर्य मुसाफ़िर' को धन्यवाद—उस अंककी कोई कापी आपके पास फ़ालतू हो तो भेज दीजिए, "कुचकलश" को आपने पसंद किया है तो किसी समय प्रकाशित करना ही होगा। ५–७ दिनमें कानपुर लौटनेका इरादा है।

भवदीय
महावीरप्रसाद

[१८]

कानपुर
११–८–०६

प्रणाम,

७ ता० के कृपा-पत्रके लिए धन्यवाद। "आर्य मुसाफ़िर" की कापियाँ मिलीं, पढ़ लीं, वापस भी आज करते हैं, पहुँच लिखिएगा।

आपकी कलाकी बीमारीका वृत्त सुनकर रंज हुआ, ईश्वर शीघ्र ही उसे अच्छा करे।

'सरस्वती'की कापी लौटानेकी ज़रूरत नहीं, इस देशमें कोई बात प्रचलित हो जानेसे उसका छूटना कठिन हो जाता है—"हिन्दू" शब्द लोगोंके हाड़-मांसमें प्रविष्ट हो गया है, अतएव जब-तक सब लोग आर्यसमाजके ऐसे विचारोंके न हो जायँगे इसका प्रयोग बन्द न होगा। शब्दोंके अर्थ हमेशा बदला करते हैं। बुरेका भला और भलेका बुरा हो जाया करता है। "आर्य" शब्दके विषयमें भी एक लेख देना है।

परलोकके पत्र मन-गढ़न्त मालूम होते हैं। कहिए ऐसी बातें न लिखा करें। पर लोग पढ़ते बड़े भावसे हैं। "दो कदीम शहर" अंगरेज़ी Archaeological Reports की बदौलत है।

खजुराहो, देवगढ़की पुरानी इमारतें, मथुराका कंकाली टीला आदि इस तरहके कई लेख तैयार हैं, पर नीरस होनेके कारण देनेको जी नहीं चाहता।

शेक्सपियरके कई नाटकोंकी आख्यायिकाएँ निकल चुकी हैं। "और भी निकालेंगे" की सूचनाके लिए धन्यवाद।

संस्कृतमें "पवनदूत" है, पर यह उसकी नक़ल नहीं, संस्कृतवालेको पढ़े हमें थोड़े ही दिन हुए।

पं० भीमसेनजीके खिचड़ी पद्य छापेंगे, तब तक उन्हें धन्यवाद दीजिए, जयपुरके पण्डित रामकृष्णने ऐसे अनेक श्लोक "जयपुरविलास" में लिखे हैं। पण्डितजीका योगदर्शन आया है, उत्तम है, लाहौरके एक पण्डितकी भूमिकामें अच्छी खबर ली है।

भवदीय

म० प्र०

[१९]

कानपुर
२१–८–०६

प्रणाम !

आपकी कलाकी मृत्युवार्ता सुनकर रंज हुआ, बच्चोंके इस तरहके चिर-वियोगसे तो शायद न होना ही अच्छा है पर क्या किया जाय, शोक चाहे कितना ही क्यों न हो धैर्य ही धरना पड़ता है।

आज्ञानुसार योगदर्शनकी आलोचना करेंगे।

विनयावनत
महावीर

[२०]

कानपुर
५–९–०६

प्रिय पण्डितवर,

३ ता० का कृपा-पत्र मिला, यह हम देख रहे हैं कि यदि सरस्वतीमें स्थान मिले तो धीरे-धीरे विक्रमाङ्क चर्चा छाप दें, और साथ ही कुछ कापियाँ उसकी अलग भी कर लें, यदि यह न हो सका तो इण्डियन प्रेससे हम कहेंगे कि वह अलग ही छाप दी जाय, कालिदासविषयक हमारे पास कुछ सामग्री इकट्ठी है, कुछ और हो जाय तो एक छोटा-सा प्रबंध कवि-कुलगुरु पर हम लिखें, संस्कृत-पत्रिकामें कालिदास पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है, सो आपने देखा ही होगा। बंगालियोंमें बाबू रामदास सेनने भी कुछ लिखा है।

'विक्रमाङ्क चरित' आपने पढ़ लिया, कृपा की, नव साहसाङ्क-चरित भी शायद आपने पढ़ा होगा। "शिक्षा" का संस्कृत-अनुवाद (Curator Govt. Book Depot) के यहाँ मिलता था, शायद किसी मदरासीका किया हुआ है, परन्तु क्यूरेटर साहबने जवाब दिया है कि सब कापियाँ बिक गईं।

अनुवादककी तलाशमें हम हैं, पता लग गया तो उससे मँगावेंगे। बहुत अच्छा, यदि हुआ होगा, तो मराठीका भी अनुवाद मँगावेंगे।

बिजनौरसे कोई माँग किताबोंकी नहीं आई, आप अपने मित्रसे इस बारेमें कुछ न कहिएगा। ठाकुर शिवरत्नसिंहको हम पुस्तकें भेज देंगे।

आपकी इस कृपाके लिए अनेक धन्यवाद। व्याकरण बनानेके लिए बहुत विद्या, बुद्धि, पठन और सामग्रीकी दरकार है। वह हममें नहीं, फिर हम करें क्या क्या? "शिक्षा" को लिखें या कालिदासको लिखें या 'सरस्वती' को लिखें, किस-किसको लिखें, आप तो बहुत काम बतलाते हैं। हम कलसे एक छोटा-सा प्रबन्ध "भाषा और व्याकरण" पर लिख रहे हैं। उसमें जब तबका भी ज़िकर आवेगा। कहिए, आपके पास पहले देखनेको भेज दें? "वेंकटेश्वर" इत्यादि "सरस्वती" का नाम शायद इसलिए नहीं लेते क्योंकि हमने आज तक उनकी समालोचना नहीं की। इससे हम असन्तुष्ट नहीं, सरस्वतीके रक्षक आपके सदृश विद्वान् हैं।

औरोंने यदि उसका नाम भी लिया तो कोई हानि नहीं। तीन दिन हुए लाला बदरीदासका पत्र आया था, उन्होंने लिखा है कि हमारा पत्र उन्होंने लाला देवराजको दिखाया, वे माफ़ी माँगनेको तैयार हैं। और कहते हैं यथासम्भव उन्होंने 'सरस्वती'का नाम देनेकी कोशिश की है। किसी अच्छे लेखकके न मिलनेसे उन्होंने किताबें लिखी हैं। और यदि हम सूचना दें तो उसके अनुसार संशोधन भी करनेको तैयार हैं। हमने लिखा

है, हमारा पत्र कमिटीमें पेश कीजिए। 'सरस्वती'का नाम देनेकी कोशिश नहीं की गई। अच्छी किताबें लिखनेवाले मिल सकते थे, और अब भी मिल सकते हैं। आज "शिक्षामणि" आई है। लालासाहबकी किताबों से अच्छी है। मौक़ा आने पर उसका भी हम हवाला देंगे। और आगे आपकी क्या राय है ? हाँ, आपसे एक काम है, झाँसीमें जब तक हम रहे पंजाबसे पट्टी मँगाकर जाड़ेके सूट बनवाते रहे। अब मार्ग बन्द हो गया, आप अमृतसर और लाहौरके पास हैं। अक्टोबरके शुरूमें क्या आप एक शुतरी (बादामी) रङ्गकी अच्छी पट्टी नौ-दस रुपयेकी मँगाकर भेज सकते हैं। एक उसी रङ्गकी मलीदेकी किश्तीनुमा टोपी भी चाहिए, गोल मिले तो और अच्छा, नाप टोपीकी रुपयोंके साथ पहले भेजेंगे।

श्रीमदीय
महावीर

[२१]

कानपुर
२९–९–०६

प्रणाम,

कृपाकार्ड मिला। आपकी बीमारी और तीमारदारीका हाल सुनकर दुःख हुआ। आशा है अब सब प्रकार कुशल होंगे। हम भी ८ रोज़ बुखारमें मुबतिला रहे। अब अच्छे हैं। सैयद साहब दमोह ज़िलेके रहनेवाले हैं। हिन्दी कवितासे शौक है। आप शायद तिजारत करते हैं। उस 'नोट' के लिए लेखक महाशयने शिकायत की है एतदर्थ एक और नोट देना पड़ा। वह अक्टूबरमें निकलेगा। सचमुच महाराज साहबका कोई दोष नहीं। अगस्तकी ग्रन्थमाला निकले एक महीना हुआ, आप दूसरी कापी मँगाइए, पहली शायद खो गई।

भवदीय
महावीर

[२२]

कानपुर
१०—१०—०६

प्रियवर !

कृपा-पत्र मिला—कई रोज़से हमारे नेत्र विकृत हो रहे हैं। लिखनेमें कष्ट होता है, कहीं धृतराष्ट्रताको न प्राप्त हो जायँ यही डर रहता है, पर आपका पत्र पढ़कर उत्तर दिये बिना नहीं रहा जाता। आपके पत्र बड़े ही विद्वत्तापूर्ण और मनोरंजक होते हैं। इस पत्रको हमने दो दफ़े पढ़ा, "भागा" वाला पद्य हमारी पाकेटबुकमें पहले ही से नोट है। खूब मनोरंजक है। प्रकाशित करेंगे, सूचनाके लिए धन्यवाद, उसीके पास पण्डितराज जगन्नाथरायका यह श्लोक भी नोट किया हुआ है।

"मत्तातपादै रचिते निबन्धे निरूपिता नूतनयुक्तिरेषा।
अङ्गङ्गवां पूर्वमहो पवित्रं कथन्न वा रासभधर्मपत्न्याः॥"

इसमें क्या खूबी है, सो ठीक-ठीक ध्यानमें नहीं आती। आप लिखिए साधारण अर्थमें तो कोई विशेषता नहीं, क्या नञा और न वाके भङ्गश्लेष पर तो पण्डितेन्द्र नहीं टूटे?

महिलाजी मिर्जापुरवासिनी बंगालिनी हैं। पति उनके विद्वान् हैं। वहीं एक अंग्रेज़ वणिकके यहाँ नौकर हैं। महिलाजीको हिन्दी, बंगला दोनोंसे शौक़ है। चिरौरी और अकचकाकर इधर खूब बोले जाते हैं। इन शब्दोंमें हमें एक प्रकारकी सरसता मालूम होती है। इससे हमने नहीं निकाले।

कान्यकुब्ज-अबला-विलापको आपने खूब पहचाना, आपका अनुमान ठीक है। हालीका "चुपकी दाद" देखकर ही हमने उसे लिखा है। बरेली अनाथालयके शेरसिंहका हाल हमें एक सज्जनने पहले ही लिखा था, वह छप भी गया। इस महीनेकी 'सरस्वती'में आपको मिलेगा।

शङ्करजीकी कविताका क्या कहना है। पञ्चाशिका उत्कृष्ट कविता है। तिसपर भी न० प्र० वाले सरस्वतीकी कविताको भद्दी बताते हैं। "क्षीणामशिक्षित" पद्य समय पर याद नहीं आया, नहीं तो हम ज़रूर लिख देते, सम्भव है शङ्करजीने अपने पद्यमें इसी कालिदासीय उक्तिकी छाया ली हो। आपकी 'सरस्वती' पर बड़ी कृपा है। आप और भी एक आध कविता लिख रहे हैं। "चकास्ति योग्येन हि योग्यसङ्गमः"। आपने खूब कही, पर 'सरस्वती' अभी अपनेको योग्य नहीं समझती। जिस तरह अनामिकाबाईने कालिदासकी सहृदयतापर आक्षेप किया था, आप श्रीहर्षकी सहृदयता पर आक्षेप कीजिए। नैषधसे दो-चार श्लोक चुनकर आप उनकी आलोचना कीजिए।

आप हमारा कभी कहना नहीं करते। कभी हमारी प्रार्थना नहीं सुनते, पर हम आपकी आज्ञाका यथाशक्ति सदा पालन करते हैं। ऐसा क्यों? अच्छा बहुत अच्छा, हम 'सरस्वती' के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लेखकोंके चित्र आपकी आज्ञासे देने जाते हैं। बहुत जल्द इसका आरम्भ होगा, और भी दो-एक सज्जनोंने इस विषयमें हमें लिखा है। पर आप ही की आज्ञाको हम अधिक महत्त्व देते हैं। अब आप नैषधकी आलोचना भेजिए और साथ ही अपना एक अच्छा फोटो भी।

शिक्षा समाप्त हो गई, बाबू शिवरत्नसिंहकी पुस्तक कहाँ लौटावें क्या वे अभी तक जालन्धर ही में हैं।

इण्डियन प्रेसमें बेहद काम रहता है।

ग़नीमत समझिए जो सरस्वती निकल जाती है। विक्रमाङ्कचर्चा आधी छपी हुई खटाईमें पड़ी है, हम उन्हें याद भी नहीं दिलाते। खुशी होगी तब छापेंगे।

जब तक "विष" का प्याला सामने न आवे तब तक "औषध" तैयार करना ठीक नहीं, व्यर्थ श्रम करना पड़े, कौन ठिकाना, शायद धमकी

हो, क्योंकि "जानि न जाय निशाचर माया" मसाला तैयार है, समय आते ही बहुत जल्द पुस्तक छप जायगी।

'सरस्वती'की ग्राहक-संख्या अब १५०० तक पहुँचना चाहती है। यदि "औषध" बनी तो कोई मात्रा बाक़ी न रह जायगी। बल्कि दो-चार चीज़ें जो आज तक किसीने नहीं देखीं वे भी घोल दी जायँगी। "रमता राम" हैं श्री पण्डित माधवप्रसाद मिश्र। उनका और हमारे मित्रका षडष्टक योग है, और है किसका नहीं ? वेंकटेश्वर, बंगवासी, मोहिनी, भारतजीवन, सरस्वती सबसे आपका वही सम्बन्ध है जो ३६ का एक दूसरेसे है।

प्रेमास्पद

महावीर

[२३]

जूही, कानपुर

४-११-०६

सविनय प्रणाम !

२६ ता० का कृपा-पत्र यथासमय मिला। उधर आप बुख़ारमें परेशान, इधर हम। आज ७-८ रोज़में चित्त कुछ स्वस्थ हुआ है। परन्तु दौर्बल्य अधिक है। इससे छोटा ही पत्र लिखेंगे, आपका पत्र तो बड़ा ही मनोरंजक है। उसे हमने दो बार पढ़ा।

आप अपना फ़ोटो ज़रूर भेजिए और नैषध पर एक लेख भी लिखिए। टालबाज़ीसे काम न चलेगा। ठाकुर शिवरत्नसिंहको हमने जालन्धर पत्र भेजा था, पर वहाँसे उत्तर अब तक नहीं आया। शङ्करजी की कविता अवश्य अच्छी होती है। हम तो चित्रों पर उन्हींसे कविता

लिखाना चाहते हैं। पर तीन चित्र भेजे ६ महीने हुए। इतने दिनोंमें उन्होंने सिर्फ़ तारा पर कविता लिखी। अभी दो उनके पास और हैं। आप ही कृपा करके हमारी सिफ़ारिश कीजिए।

'सरस्वती'की अक्टूबरवाली संख्यामें जो "शरद" है, वह प्रायः अनुवाद मय है। किरातके कई पद्योंका अविकल अनुवाद उसमें है।

टेसूके विषयमें जो कुछ ज्ञात था लिखा, आगेकी राम जाने।

हमें कादियानीका बहुत कम हाल मालूम है, इसीसे हमने उसका चरित छाप दिया। तिस पर भी हमने नोट दिया ही है। उसका चित्र रह गया था, समय पर न आया था, सो प्रेसवालोंने इस महीनेकी 'सरस्वती'में लगा दिया। आप एक छोटा-सा लेख उसके उत्तरमें भेजिए, हम छाप देंगे। शिष्टताका उल्लंघन न हो और धार्मिक बातें जहाँ तक बचाई जा सकें बचाइएगा। सिर्फ़ कादियानीसे सम्बन्ध रखनेवाली ही बातें लिखिएगा। योगदर्शनकी आलोचना निकलेगी, क्या करें स्थल ही नहीं मिलता, इससे समालोचनाएँ रह जाती हैं। भरसक इस महीने कुछ निकलेंगी। शरद्-वर्णनमें माघवाला श्लोक प्रसिद्ध ही है। पर अब शरद गई, इससे इस विषयके अब और कोई पद्य सरस्वतीमें न निकलेंगे। पर आपने जो श्लोक भेजे उत्तम हैं। हेमन्तवाला "लज्जा प्रौढ़े मृगीदृशां" दिसम्बरमें निकालनेकी कोशिश करेंगे।

नवम्बरके लिए शरद् पर कविता गई। इस "मृगीदृशां" वालेमें "प्रणयिता वाराङ्गनानामिव" की जगह "प्रणयिनो वाराङ्गनानामिव" हो तो कैसे ?

"वासराः" का उपमान "प्रणयिता" ठीक होगा ?

भवदीय
महावीरप्रसाद

कविताविषयक पद्य बहुत करके आपको दिसम्बरमें मिलेंगे।

[२४]

दौलतपुर, डाकघर—भोजपुर
रायबरेली
१४-११-०६

प्रिय मित्र !

८ ता० का कार्ड मिला। हमारी वृद्ध माता सख्त बीमार हैं। इससे उनकी आज्ञा पाकर हम यहाँ आये हैं। उनका हाल देखकर कानपुर जायँगे।

"प्रणयिनः" पर आपने जो भाष्य रचा सो हमारी मोटी बुद्धिमें ठीक-ठीक नहीं आया। हमें क्या करना है। हम आपका प्रेमी "प्रणयिता" ही रहने देंगे।

योगदर्शनकी आलोचना लिखी रक्खी है, किसी संख्यामें अवश्य निकलेगी। कविताविषयक पद्य बहुत करके इसी महीनेमें निकल जायँगे। आपके भी दो-एक पद्य उसमें रहेंगे। "शीत" वाला पद्य नोट कर रक्खा है। देनेका वादा नहीं करते।

"**निद्राकोपकषायितेव दयिता संत्यज्य दूरं गता**........................ **नो क्षीयते शर्वरी**" भी देने लायक है। हमारे खास मतलबकी जो बात हमारे पत्रमें थी उसका उत्तर आपने नहीं दिया। हम भी आपके कादियानीवाले पत्रांशका उत्तर नहीं देंगे। यहाँ एक देहातीने हमें एक यह श्लोक कल सुनाया—

"माषपेषणमिषेण मृगाक्ष्या दोलितो बहुरतीव-नितम्बः।
प्रोषिते प्रियतमे चिरकालं विस्मृतं सुरतमभ्यसतीव" ॥१॥

विनीत

महावीर

[२५]

जूही, कानपुर
७–१२–०६

प्रणाम !

कल रातको यहाँ आये। खतरनाक प्लेग है। कल फिर प्रस्थान है। शायद फ़ैजाबाद, गोरखपुर वग़ैरह आकर कुछ दिन रहें। पत्र-व्यवहार कानपुरके ही पतेसे रहे। श्रीकंठचरित इस उजलतमें नहीं भेज सकते।

स्थिति-स्थापकता हो जाने पर कानपुर लौटकर भेजेंगे। कोई अपना चरित (जन्मभूमि आदिका विवरण) बतलावे ही नहीं तो क्या किया जाय?

हम तो वही चाहते हैं जो आप पर लाचारी है। आप अपना फोटो भेजकर, कृपा कर हमारी इस इच्छाको पूर्ण कीजिएगा। आपने नवम्बरकी 'सरस्वती' पसन्द की। चलो हमारा परिश्रम सफल हो गया।

"शुष्कस्तनी" विषयक आपका आशय हमारेसे अच्छा है।

कृपा करके जब कभी श्लोक भेजा कीजिए तब उनका भाव भी लिख दिया कीजिए। "कथाखंड" को फिर लिखकर भावार्थ सहित भेजनेकी दया दिखाइए। आपने जो समानार्थक संस्कृत, उर्दू, फ़ारसीके पद्य भेजे हैं, सब रक्खे हैं। सब प्रकाशित होंगे।

"माषशिमिवत्" का मतलब हमारे ध्यानमें नहीं आता। मुमकिन है कुछ अर्थ होता हो। स्पेंसरका चित्र मिल सका तो ज़रूर "शिक्षा" के साथ निकाला जायगा।

विनीत
महावीर

[२६]

कानपुर

२१—१—०७

प्रणाम !

कृपा पत्र-मिला। कानपुरमें कहीं-कहीं अभी तक प्लेग बना हुआ है। हमारे पासके एक गाँवमें खूब है। उससे हम लोग अलग रहते हैं।

अबकी बार अर्थशास्त्र पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखनेका विचार है। शिक्षा अभी तक हमारे ही पास है।

कविताके लिए धन्यवाद।

गवर्नमेण्टकी किताबें बहुधा दुबारा कम छपती हैं। Govt. Central Book Depot लिखते हैं।

प्रणत

म० प्र०

[२७]

दौलतपुर

डाकघर भोजपुर [रायबरेली]

२९—४—०७

प्रियवर !

आपका कृपा-पत्र बहुत दिनोंमें मिला। आजकल हम अपने गाँवमें हैं। १० मार्च तक कानपुर जायँगे।

यदि विक्रमाङ्क आपको इतना पसंद है तो हमारी कापी आप अपने ही पास रहने दीजिए। खेद है, आपने सतसई अभी तक न देखी थी। उत्कृष्ट कविता है। ध्वनिका आकर है। 'लाल चन्द्रिका' न मालूम कहाँ मिलती है। कृष्ण कविने दोहोंकी टीका सवैयोंमें लिखी है। वह भी अच्छी है। एक सतसई वंगवासीवालोंने निकाली थी, पर हमने नहीं

देखी। अंबिकादत्तका "विहारी विहार" आपने देखा ही होगा। जो दो दोहे आपने भेजे, उनको अकेले क्या छापें, आप और दोहोंके साथ भेजिएगा। सतसईकी beates आप समझाइये। आजकल हम हालीके दीवानमें जो मुक़द्दमा है पढ़ रहे हैं। ख़ूब लिखा है। हम हालीका चित्र 'सरस्वती'में छापना चाहते हैं।

विनीत
महावीर

[२८]

चरखारी, हमीरपुर
२९–९–०७

प्रिय पण्डित जी!

बहुत दिनोंमें आपने हमारी ख़बर ली। सुनकर रञ्ज हुआ कि आप इतने दिनों तक बीमार रहे। आशा है अब आप बिलकुल अच्छे होंगे।

बाबू साहबने "पुनन्तु"—इत्यादि तो नहीं कहा। पर क्षमा माँगी। इसीसे हमने और कुछ लिखनेका विचार छोड़ दिया है। वक्तव्य अब न छपेगा। प्रेससे वापस मँगा लिया।

कोई साहित्य-संसारमें विशेष बात नहीं हुई। हाँ, "भारतमित्र" के गुप्त जी मरे, यह सुनकर दुःख हुआ। "सुनृतवादिनी" कई महीनेसे नहीं निकली। ५–७ दिनमें कानपुर जायँगे, वहाँ से "देवनागर" ढूंढ़कर भेजेंगे। उसके आज तक शायद दो ही अङ्क निकले हैं।

दुर्भिक्ष यहाँ भी पड़ना चाहता है। प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है।

विनीत
महावीरप्रसाद

[२९]

जूही, कानपुर
२२—४—०८

प्रिय मित्र, प्रणाम,

कार्ड मिला। पं० रामदयालुकी खबर सुनकर दुःख हुआ। उनसे हमारी समवेदना सूचित कीजिएगा। ईश्वर उन्हें शीघ्र अच्छा करे।

हमारा वह श्लोक दे दिया था? दो-एक दिनमें हमारा इरादा घर जाने का है। कोई एक हफ्ते बाद लौटेंगे। बाणभट्ट भेजते हैं। पहुँच लिखिएगा। देखकर लौटा दीजिएगा, कोई जल्दी नहीं है। विद्यावारिधिका वेद २ जिल्दोंमें है। बड़ा है। दाम कोई १० रु० है।

हमें दुनियाके किसी पत्र और किसी भाषासे लेख उद्धृत करनेसे इनकार नहीं। पर चीज़ उद्धृत करने योग्य होनी चाहिए। "वैरागी" यदि इस लायक हो तो भेजिए। आपने जन्म भरमें एक लेख भेजा सो भी पूरा नहीं। पूरा करनेमें भी आप झंझट बतलाते हैं। वाह साहब! जाने कैसे देंगे। आपको पूरा लेख भेजना पड़ेगा। न पसन्द आवेगा तो आप अपने "उपकारी" में छाप डालिएगा।

भवदीय
म० प्र०

[३०]

दौलतपुर, डाकघर—भोजपुर
रायबरेली

१६—७—०८

प्रणाम,

आजकल हम अपने जन्म-ग्राममें हैं। ४ अगस्त तक कानपुर जानेका विचार है। आपका कृपापत्र मिला। समानार्थक पद्योंके लिए धन्यवाद।

वे National गीत हम 'सरस्वती'में न छापेंगे। आजकलकी राजनैतिक स्थिति आपसे छिपी नहीं है। लेखकको सूचना दे दीजिएगा।

और सब कुशल है। पानी थोड़ा यहाँ भी बरसा है। कृपा पूर्ववत् बनी रहे यही प्रार्थना है।

भवदीय
महावीरप्रसाद

[३१]

जूही, कानपुर
६—८—०८

प्रणाम,

ले डाला शर्माजीको।

अच्छा किया 'सरस्वती'को गालियाँ दे-देकर आप शेर हो गये थे। सो, आपने उन्हें गीदड़ बनानेका उपक्रम किया है।

आषाढ़के "परोपकारी" में आपके लेखको पढ़कर शर्माजी पर हमें बड़ी दया आई है।

कृपा करके राजवैद्य पं० रामदयालुजीसे कोई ज्वरघ्न रामवाण दवा शर्माजीको भिजवाइए।

आपका लेख पढ़कर शर्माजीको ज्वर आये बिना न रहेगा।

विनीत
महावीरप्रसाद

[३२]

जूही, कानपुर
१६—८—०८

प्रणाम,

१४ का कृपा-पत्र मिला, जवाब मुख्तसिर देंगे। पं० गिरिधरशर्मा (झालरापाटन) आज हमारे यहाँ पधारे हैं। उनके साथ अभी शहर जाते हैं। यही कारण है।

चित्रके लिए प्रेसको लिख दिया। तैयार होने पर आप "शङ्कर" के करकमलोंसे कविता लिखा दीजिएगा। उन्होंने "हिजड़ेकी मजलिस" नामकी कविता भेजी है। उसके छापनेमें हमें पस व पेश है। इससे शायद वे कुछ नाराज़ हो जायँ। एक बात सुनकर आश्चर्य हुआ। भक्तराम बी० ए० को क्यों उभार रहे हैं ?

वे तो आपके पासके बैठनेवाले हैं। किसीका कुछ किया न होगा। आप डरिएगा नहीं। वहाँकी नौकरी कौन लाख टकेकी है। जहाँ तक सम्भव होगा आपके पद्य सितम्बरमें निकाल देंगे। हमें आपके श्लोक देनेमें उज्र नहीं। पर याद रखिए संस्कृत श्लोकोंके ज्ञाता एक ही दो हैं। आप अपना-सा हाल सबका न जानें। आपका इस बारका पद्य अशुद्ध छप गया, इसका खेद है।

शङ्करजीकी कविताके संग्रहके बारेमें फिर लिखेंगे।

उनकी कविता हमारे सचित्र "कविताकलाप" में निकल जाने दीजिए, फिर देखा जायगा।

सतसईकी आलोचना आपको पहले सब भेजनी होगी। हम आपके सब प्रणयानुरोधोंकी रक्षा करते आये हैं। आपको भी हमारे इस अनुरोध की रक्षा करनी होगी।

"भू-भ्रमण खण्डन" नहीं देखा।

बाणभट्टका काम हो गया हो तो लौटाइएगा।

विनीत

म० प्र०

[३३]

जूही, कानपुर
२१–८–०८

प्रणाम,

कृपा-कार्ड १–८ का मिला।

शङ्करजीके पास कई चित्र कोई एक वर्षसे पड़े हैं। एक पर भी कविता नहीं लिखी। उर्मिला पर तुरन्त लिख देंगे, यह कैसे आशा की जा सकती है? हमने उन्हें लिख दिया है कि चित्रमें वही भाव रक्खा जायगा जो आपकी कवितामें होगा। आप पहिले कविता लिखिए।

"सतसई संहार" थोड़ेमें पूरा करके भेजिए। हम उसे यथासम्भव शीघ्र छापना शुरू करेंगे। "परोपकारी" के बदले "सरस्वती" मिलती है या नहीं?

भवदीय
महावीर

[३४]

जूही, कानपुर
२४-९-०८

विनयपूर्वक निवेदनमिदम्।

ला० हरिश्चन्द्रजी आज मिले। कुछ पुड़ियाँ दीं। ४-५ दिनसे हमने जल-चिकित्सा फिर शुरू की है। उसका परिणाम देखकर यह दवा खायेंगे। "बाणभट्ट" मिल गया। "शंकर" जी को हमारी तरफ़से धन्यवाद दीजिएगा। गौरीशंकरजीको 'सरस्वती' भेजनेके लिए लिख देंगे। 'प्रचारक' में यदि कोई सप्रमाण, साधार और तर्कसंगत बात हो तो कृपा करके अपनी कापीका कटिङ्ग आप ही भेज दीजिए। यदि प्रलापमात्र हो तो जाने दीजिए।

तबीअत हमारी अभी तक वैसी ही है। घंटे आधघंटे रातको मुश्किलसे नींद आती है। लाला हरिश्चन्द्रसे आपकी बहुत बातें होती रहीं।

न मालूम आपके अब कब दर्शन हों।

विनीत

महावीर

[३५]

जूही--कानपुर

११-१०-०८

प्रिय पंडितजी महोदय,

जिस समय हमारे पत्रके विस्तृत उत्तरकी ज़रूरत थी उस समय आपकी आँख उठ आई। सुनकर दुःख हुआ। हमारा दुर्भाग्य !

ख़ूब किया जो आपने नोट दिया। क्षमा माँगनेकी क्या ज़रूरत। आप जिस समाजमें हैं उसकी सी भी तो कुछ करना चाहिए।

जब वह लेख "आर्यमित्र" न छापेगा तब देखा जायगा।

हमारे पूर्व पत्रका विस्तृत उत्तर, जो कोई आपकी सामाजिक हानि न हो तो, शीघ्र भेजिएगा। इस दफ़े हम अपने अभियोक्ताओंको सहजमें नहीं छोड़ना चाहते। अतएव ८ अक्टोबरके आर्यमित्रसे लेकर आगे जो कुछ हमारे विरुद्ध उसमें निकले कृपा करके पूरा पत्र भेजते जाइए। इतनी चीज़ें और भी हमें भेजिए। १–फाल्गुनका परोपकारी, २–शिक्षामञ्जरी ३–बी० एन० शर्माकी और किताबें जो आपके पास हों, ४–१६ जूनका आर्यमित्र जिसमें बी० एन० ने आपकी आलोचनाका जवाब दिया है, ५–बी० एन० की अपील, ६–पं० बाबूराम शर्माकी किताब (रामायणकी भूमिका या और जो नाम हो)।

इस कष्टको क्षमा कीजिएगा।

विनीत–

महावीरप्रसाद

[३६]

जूही, कानपुर
१८-१०-०८

प्रणाम !

१६ का कार्ड मिला। फाल्गुनका 'परोपकारी' भी मिला। थैंक्स।

कल आपको हम पत्र भेज चुके हैं। ये महापुरुष दीनदयालु चौबे कौन हैं? हम नहीं जानते। याद नहीं पड़ता कभी देखा हो। साथ रहना तो दूर रहा।

आपने खूब जवाब दिया, शान्ति तो खड्ग होती है क्षमा भी होती है:—

"**क्षमाखड्गं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति**"। पं० गिरिधरशर्माजीका पत्र दो महीने बाद आया है।

देरीके लिए हमने उलाहना दिया है।

विनीत
महावीर

[३७]

जूही, कानपुर
३०-११-०८

प्रणाम !

३ हफ़्तेके बाद परसों कानपुर लौटकर आये। २० नवम्बरका आपका पत्र मिला। अब तबीअत पहलेसे अच्छी है। पर नींद न आनेकी शिकायत बनी हुई है।

२२ नवम्बरको आगरेके बा० श्रीराम एक वहींके वकीलसाहबके साथ हमसे लखनऊमें मिले थे। दूसरे दिन पं० भगवानदीन मिश्रसे भी हमारी मुलाक़ात हुई।

समाजके जलसेमें हमारे कई एक आर्य-मित्र भी आये थे। वे भी मिले। सबने बी० एन० शर्मा और "आर्य्यमित्र" पत्रके लेखों और पालिसीको धिक्कारा। मिश्रजीने हमसे क्षमाका मसविदा लिया, और कहा कि २४ नवम्बरको हम आपको ख़बर देंगे कि यह क्षमापत्र आर्यमित्रमें छपेगा या नहीं। परन्तु आजतक उनका उत्तर नहीं आया। एक हफ़्ता ठहरनेके बाद अब हम नालिश दायर किये बिना नहीं रह सकते। विवश हैं। मिश्रजी कहने लगे कि यदि हम बाबूरामको बरख़ास्त कर दें और आर्यप्रतिनिधि सभाकी ओरसे क्षमा-पत्र छाप दें तो आप संतुष्ट हो जायँगे या नहीं? हमने कहा—प्रतिनिधि सभासे हमारा कोई झगड़ा नहीं। इससे उसकी क्षमा-प्रार्थनासे हमारे चरितकी निष्कलङ्कता साबित न होगी। जिन्होंने हमें गालियाँ दी हैं और हम पर मिथ्या दोष लगाये हैं, उन्हें क्षमा माँगनी चाहिए। हाँ, यदि सभा समझती हो कि बाबूरामने अन्याय किया है तो वह उन्हें बरखास्त कर सकती है।

पं० दामोदरप्रसादका कार्ड पढ़ा। १६ नवम्बरका आर्यमित्र भी पढ़ा। अब तक हमारी आर्य-समाजसे बड़ी सहानुभूति थी, पर शास्त्री ऐसे पण्डितोंके इस तरहके लेख पढ़कर अब इस समाजसे हमें घृणा हो रही है। क्षमा कीजिए। हम नहीं जानते थे कि पढ़े-लिखेजन भी इतने सङ्कीर्ण-हृदय होते हैं और त-अस्सुबकी आगमें इतने जल-भुन सकते हैं।

यदि कोई विशेष कारण न हो तो आप 'आर्यमित्र'की सम्पादकता स्वीकार कर लीजिए। आपके कारण उसकी कायापलट हो जायगी। पढ़नेवालोंका वह आदर-पात्र हो जायगा। आपके आगरे आनेसे हम भी शायद कभी-कभी आपके दर्शनोंका लाभ उठा सकेंगे।

लाला हरिश्चन्द्र कहते थे कि आप और आपके मित्र नरदेव शास्त्रीजी आदि मिलकर एक प्रेस करना चाहते हैं।

यदि ऐसा हो तो बहुत ही अच्छी बात है। इस दशामें इंडियन प्रेस या आर्यभास्कर प्रेसकी नौकरी करना अभीष्ट नहीं।

तज़करे हज़ारदास्ताँ वाला नोट हमने "ज़माने" में उसका रिव्यू पढ़कर ही लिखा है।

पुस्तक हमने नहीं देखी।

विनीत

महावीरप्रसाद

[३८]

जूही, कानपुर

२७-१-९

प्रणाम,

कृपाकार्ड मिला। प्राचीन लिपिकी बात ज्ञात हुई। पं० भगवानदीन जी कहाँ हैं? लिखिए, उन्हें हम पत्र भेजे तो किस पते पर। हम नालिश करनेके ही इरादेसे शीघ्र घरसे लौट आये हैं। अनुवाद तैयार है। "वी प्रूफ़" तैयार है। दो-चार दिन और ठहरे हैं। कृपा करके पण्डितजीको लिख दीजिये। जो कुछ करना हो शीघ्र करें।

भवदीय

म० प्र०

[३९]

जूही, कानपुर

१४-२-९

प्रणाम,

कृपाकार्ड मिला। आज बी० एन० शर्माजी यहाँ पधारे हैं। मुख्य-मुख्य पत्रोंमें क्षमा मांगने जा रहे हैं। मसविदा ले लिया है। अब

"आर्यमित्र" वालोंका शीघ्र फ़ैसला हो जायगा। यह क्षमापत्र छपते ही शीघ्र नालिश कर देंगे। अच्छी बात है ज्वालापुर पधारिए। ईश्वर आपको इस नये काममें साफल्य प्रदान करे। किसी समय हम भी वहाँ आपके दर्शनार्थ आनेकी चेष्टा करेंगे। पं० गौरीदत्तके भाई आज कल काशीमें हैं। खेद है, सरस्वतीका सितम्बरवाला अंक कोई फ़ालतू नहीं। स्वास्थ्य अभी हमारा पूर्ववत् चला जाता है। दया करके उस प्राचीन लिपिको लौटा दीजिए। अब-तक नहीं पढ़ी गयी कब पढ़ी जायगी। उसकी ज़रूरत क्यों पड़ी। और कुछ हमें भी सुनाइएगा।

भवदीय

म० प्र०

[४०]

जूही, कानपुर

२४—२—०९

प्रणाम,

उज्जैनसे भेजा हुआ पत्र आया। आपके जो-जो जीमें आता है लिखा करते हैं। यहाँ तक कि हमारी नीयत पर भी क़ब्ज़ा कर लेते हैं। हम जो हँसीकी भी कोई बात लिख देते हैं तो आपको "वेदना" होती है। वाह! अच्छी आपकी वेदना है। आप अपने पत्रमें हमारे और हमारे लेख आदिके विषयमें जो लिखते या छापते हैं, उसे हम सुनते नहीं तो क्या करते हैं। सिर्फ़ देखकर ही नहीं रह जाते। याद होगा हमने तो खुद ही आपको लिखा था कि आप जो चाहिए लिखिए हम चुपचाप सुनेंगे। फिर आपको बुरा क्यों लगना चाहिए। हमारी तन्दुरुस्ती अभी तक खराब है। २ महीनेके लिए हम कहीं बाहर विश्राम करने जाना

चाहते हैं। ज्वालापुर पहुँचकर कोई ऐसी जगह हमारे लिए तजवीज़ कीजिए जहाँ हम एकान्तमें आरामसे सस्त्रीक रह सकें। प्राकृतिक दृश्य अच्छा हो। भ्रमण करनेके लिए सड़कें या साफ़ रास्ते हों। खाने-पीने का सामान सब मिलता हो। रहनेके लिए भी जगह आरामकी हो। ज्वालापुर ही में अपने पास रखनेकी चेष्टा न कीजिएगा। हमारे स्वास्थ्यका ख्याल करके कोई अच्छा स्थान दूर हो या निकट, तजवीज़ कीजिएगा। फोटो ओझाजीसे लेकर ज़रूर लौटा दीजिएगा। बी० एन० जीकी क्षमा प्रार्थना 'भारतमित्र'में छप गई। 'आर्यमित्र'ने अभी नहीं छापा। पं०भगवानदीनने आर्यमित्रमें आर्य्यमित्रवालोंकी तरफ़से भी क्षमा-प्रार्थनाका मज़मून भेजा है। मसविदा ठीक न था। इससे हमने दूसरा भेजा है। उज्जयिनीका हाल पढ़कर हमारे भी मनकी अजब हालत हुई। हम तो उज्जैनके बहुत पाससे निकल गये। पर वहाँ न जा सके अफ़सोस रहा।

ज्वालापुर पहुँचकर पत्र भेजिएगा।

भवदीय

म० प्र०

[४१]

जूही, कानपुर

२८–३–०९

प्रणाम,

२५का कृपा कार्ड मिला। ज्वालापुर पहुँचकर वहाँका हाल लिखिएगा। हम, यदि कोई विघ्न न हुआ तो ५ एप्रिल सोमवारको सुबह ६ बजेके लगभग ज्वालापुर पहुँचेंगे—सस्त्रीक बहुत करके एक दिनके लिए गौरीदत्त भी आवेंगे। और शायद हमारे मित्र बाबू सीताराम भी दो-एक दिनके

लिए आवें। बाबू सीतारामको ज्वालापुरके पोस्टमास्टर और स्वामी स्वरूपानन्द जानते हैं। ठहरनेका प्रबन्ध कर रखिएगा। स्थायी प्रबन्ध वहाँ आकर करेंगे।

भवदीय
म० प्र०

[४२]

जूही, कानपुर
१५-५-०९

प्रणाम,

कृपा-कार्ड मिला। १३ ता० की शामको यहाँ आ गये। स्वास्थ्य वैसा ही है। कलसे जल-चिकित्सा शुरू की है। मन्ना मजेमें हैं। यदि आपका कुछ काम निकले तो विद्यालय देखने आदिका हाल आप अपने पत्रमें दे सकते हैं। श्लोक भी आप दे सकते हैं। कोई बात बढ़ाकर न लिखी जाय। पहले ही पहल दो अंक एक साथ निकालना अच्छा नहीं लगता। प्रबन्धकी त्रुटि जाहिर करता है। वैशाखसे न सही जेठसे ही। कौन बड़ा अन्तर है। यों आपकी इच्छा। पूने वालोंका पता ढूढ़ेंगे। मिलने पर लिखेंगे। उस श्लोकमें और भी कई पाठान्तर हो सकते हैं यथा—

१—निशम्यतां लेखललाममालिका

सञ्चय

२—प्रकाशने यस्य विशेषनिश्चयः

येन कृतोऽतिनिश्चयः

येन कृतो विनिश्चयः

यदि दूसरी लाइनसे "विशेष" शब्द निकाल डाला जाय तो तीसरी लाइन इस तरह हो सकती है:—

३—गृहीतसद्धर्म्मविशेष-सञ्चयः :—

समूह

विचार

४—चकास्ति सोऽयं भुवि भारतोदयः

विभाति सोऽयं

स शोभतेऽसौ

इनमेंसे जो पाठ आपको अच्छा लगे रख लिजिए।

भवदीय
म० प्र०

[४३]

जूही, कानपुर
१—६—०९

प्रणाम,

भारतोदय अच्छा निकला। हमारी बड़ी तारीफ़ आपने कर दी। उसके हम मुस्तहक़ नहीं। बीमारीके विषयमें इतना न लिखना था। आप शायद देहलीका जलसा देखने गये हैं। वहाँ भी, सुनते हैं, मारपीट हुई है। झालरापाटनसे पत्र आया है। पर उस बातका जिक्र नहीं। शायद उतना वेतन देना उन्हें मंजूर नहीं। याद दिलाना हम मुनासिब नहीं समझते। कविता-कलापके कुछ चित्र अभी तक तैयार नहीं हुए। इसीसे निकलनेमें देरी हो रही है। कल घर (दौलतपुर) जानेका विचार है। महीना-पन्द्रह दिन वहीं रहेंगे। स्वास्थ्यका वही हाल है। यहाँ फिर ज्वर आ गया। इससे और भी कमज़ोर हो गये हैं। भारतोदयके पहले अंककी एक-एक प्रति नमूनेकी इन लोगोंको भी भेज दीजिएगा—

१—पं० श्यामबिहारी मिश्र, २—बा० श्यामसुन्दरदास, ३—कामताप्रसाद गुरु, ४—बा० मैथिलीशरण गुप्त, ५—पं० गौरीनारायण मिश्र।

भवदीय
म० प्र०

[४४]

जूही, कानपुर
९–८–०९

प्रिय मित्र,

५ ता० का पत्र मिला। शिमलेसे भेजे गये आपके पत्रका उत्तर दे चुके हैं। चक्करमें डालनेवाले चित्रका उत्तर ठीक है। इस विषयकी हज़ारों चिट्ठियाँ हमारे पास आ चुकी हैं। नाकों दम है। अब यह प्रबन्ध आगे न चल सकेगा। वर्षा-विषयक दोहे एक नवीन कविके हैं। **स्वर्गसहोदर** सचमुच ही उत्तम कविता है। कई लोगोंने तारीफ़ की है। सूरश्यामवाले पदके विषयमें फिर कभी पूछेंगे। अभी हम चक्करमें पड़ने वालोंके उत्तरसे घबराये हुए हैं। प्रतिबिम्बवाले लेखकी अशुद्धियोंके कारण हम लज्जित हैं। हमने गत २ महीने कुछ काम नहीं किया। 'सरस्वती' निकल रही है, यही ग़नीमत है। दौरेसे पत्र भेजते रहिएगा। हो सके तो एक-आध लेख भी भेजिएगा। बड़ी ज़रूरत है।

भवदीय
म० प्र० द्वि०

[४५]

जूही, कानपुर
१४–१०–०९

प्रियवर,

कृपा-कार्ड मिला। सरस्वतीमें "ख़ूब" की सामग्री तो अब रामका नाम ही रहता है। यह आपकी कृपा है, जो उसे वैसा समझते हैं। आपके डेपुटेशनको ख़ूब कामयाबी हुई; सुनकर हम बहुत प्रसन्न हुए। औरोंको हसद हुआ है। स्वास्थ्य ठीक नहीं। जनवरीसे विश्राम करेंगे।

'सरस्वती'को किसी औरको सौंपेंगे।

भवदीय
म० प्र० द्वि०

[४६]

जूही, कानपुर
१६—१०—०९

प्रिय मित्र,

प्रणाम, आपका १४ तारीखका तार आज १६ को मिला। इसके पहले ही हम आपके कार्डका उत्तर दे चुके हैं। पहुँचा होगा। इसीसे आपके तारका उत्तर तारसे नहीं देते। आपकी समवेदना और सहानुभूतिके लिए अनेकानेक धन्यवाद। आपकी इस कृपाने हमारे मानसिक और शारीरिक कष्टोंको बहुत कुछ कम कर दिया है। जो अपने होते हैं वही आपत्तिमें साथ देते हैं। वही आत्मीय जनोंके दुःखको अपना समझते हैं। आप इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। ज्वर तो हमारा जाता रहा है। नींदकी शिकायत बनी हुई है। जनवरीसे पूर्व विश्राम करनेका विचार है।

भवदीय
म० प्र० द्वि०

[४७]

जूही, कानपुर
३०—१०—०९

प्रणाम,

रावलपिण्डीसे भेजा हुआ कृपा-कार्ड मिला। आशा है अब आप ज्वालापुर लौट आये होंगे। तबीअत हमारी वैसी ही घसपस चली जाती है। कृपा करके अब कभी आप हमारे शिक्षासरोज और दूसरी रीडर्सको किसी ऐसे सज्जनको न दीजिएगा जो पाठ्य-पुस्तकें बनाना चाहता हों। वे

पुस्तकें बाक़ायदा प्रकाशित नहीं हुईं। बाबू भवानीप्रसादने उनकी कई कविताएँ अपनी पुस्तकोंमें रख दी हैं। इस बातको आप भी जानते होंगे।

आर्य्यभाषा पाठावली प्रथम भागकी कापी हमारे पास आई है। उसमें आपके किये हुए संशोधन हैं।

भवदीय
म० प्र० द्वि०

[४८]

जूही, कानपुर
११–११–०९

प्रणाम

कृपा-पत्र मिला। लाला भवानीप्रसादका पत्र भी उसके साथ मिला। आपके वे आन्तरिक मित्र हैं। आप उनके कामको "कविता-चुराना" कह सकते हैं; हम नहीं। कविका नाम देने पर चोरीका इलज़ाम नहीं लगाया जा सकता। इच्छा-विरुद्ध काम करनेसे जबरदस्ती अलबत्ते कही जा-सकती है। खैर, कुछ भी हो। हमने मुख्याधिष्ठाताजीको लिख दिया है कि जो कविताएँ लाला भवानीप्रसादने रक्खी हैं रहने दी जायँ। पर इण्डियन प्रेसको रीडरोंसे चित्र न नक़ल किये जायँ।

भवदीय
म० प्र० द्वि०

[४९]

जूही, कानपुर
९–३–१०

प्रणाम,

कृपा-कार्ड मिला। तबीअत कुछ अच्छी होने लगी थी कि फिर एकाएक खराब हो गई। एक हफ्तेसे बहुत कम नींद आई है। कारण ज्ञात नहीं, प्रूफ़ वगैरह देखते रहे हैं। शायद इसीसे हो। क्षमा कीजिए।

हम ज्वालापुर आने योग्य नहीं। यदि तबीअत अधिक खराब न हो गई तो १८ मार्चको दौलतपुर जानेका विचार है। वहाँ महीना-पन्द्रह रोज़ चुपचाप पड़े रहेंगे। बाद कानपुर आवेंगे। कविरत्नजीने दर्शन नहीं दिये। शिक्षाकी एक कापी प्रयागसे आपके पास आवेगी। वे चाहते हैं कि किसी अखबारमें आप उसकी बाबत कुछ लिख भेजें।

भवदीय
म० प्र० द्वि०

[५०]

कानपुर
१६-३-१०

प्रणाम,

आपका भेजा एक फ़ार्म और एक पेज पढ़ा। मुँहतोड़ जवाब है। भारतोदय आने पर उसे भी पढ़ूँगा। हस्तपत्रको मैंने पढ़ा, सख्त वाक्यों पर निशान लगाया। फिर उन्हें रायसाहबको सुनाया। उनकी रायमें पकड़ की कोई बात नहीं। पर बेहतर होगा, अगले एडिशनमें अधिक सख्त बातें कुछ नरम कर दी जायँ। हस्त-पुस्तक लौटाता हूँ। राय देवीप्रसादकी राय उसकी पीठ पर देखिये। कल आपकी हस्त-पुस्तक और प्रूफ़ पढ़ा। दो-एक अखबार भी पढ़े। इतने हीसे दिमाग़में विशेष खराबी पैदा हो गयी। कल रातको बिलकुल ही पलक नहीं लगी। मेरा तो यह हाल है। पं० देवी-प्रसाद 'सरस्वती'में लिखने जाते हैं कि मैं अच्छा हो गया। वे शायद आपके मेलेमें आवें। उन्हींको मेरा प्रतिनिधि समझिए। पत्र आपका फाड़ डाला।

भवदीय
म० प्र० द्वि०

[५१]

जूही, कानपुर
२७–५–१०

प्रणाम,

कृपा-पत्र मिला। कृतार्थ किया। तबीअत मेरी अभी तक सुधरी नहीं। कुछ आराम ज़रूर है, पर इतना नहीं कि लिख-पढ़ सकूँ। इस कारण अभी 'सरस्वती'के विषयमें कुछ नहीं कह सकता। १ जूनको २ महीनेके लिए दौलतपुर जानेका विचार है। वहाँ भी यही करना होगा। इस हफ़्तेका "भारतोदय" अवश्य मनोरञ्जक है कुछ पढ़ लिया। बाक़ीको भी पढ़ूँगा। "शिक्षा" की समालोचनाके लिए धन्यवाद। ख़ूब है। पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। पर आपका माफ़ी माँगना अनुचित हुआ। स्पेन्सर उस शिक्षाको शिक्षा कहते हैं जिससे जीवन अच्छी तरह सार्थक हो सके। तदनुसार उनकी रायमें (मेरीमें नहीं) संस्कृत पढ़नेकी तादृश ज़रूरत नहीं।

स्पेन्सरने धर्म, कर्म्म, आर्य्यता, अनार्य्यताके खयालसे नहीं, किन्तु अपने किये हुए शिक्षाके लक्षणको ध्यानमें रखकर वैसा लिखा है।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[५२]

दौलतपुर
२४–६–१०

प्रणाम,

कृपा-कार्ड मिला। हाँ, शायद ग़ालिबसे भी ज़्यादह। प्रायः आम ही खाते हैं। आमों ही की फ़िक्रमें रहते हैं। और आम ही ढूँढ़ा करते हैं।

इससे हमारा क़ब्ज़ रफ़ा रहता है और नींद भी काफ़ी लगती है। दिनको भी कुछ देर सो जाते हैं। और रातको भी ४–५ घण्टे। स्वास्थ्य पहलेसे बहुत अच्छा है। "सतसई-संहार" में सुधादीधिति पर आपकी आलोचनाने मारटिनी हेनरीका काम किया है।..................

भवदीय

म० प्र० द्विवेदी

[५३]

दौलतपुर

१–७–१०

प्रणाम,

२७ का कार्ड पहुँचा। विद्यावारिधिजीके मित्र पं० नन्दकिशोर शर्मा वाणीभूषण परसों मिलने आये थे, एक मित्रके साथ। उनका गाँव हमारे से १४ मील पर है। संहारके कारण आप पर सख़्त नाराज़ थे।

हमने उनका समाधान कर दिया। सब तरहसे आपको निर्दोष साबित कर दिया।

भवदीय

म० प्र०

[५४]

जूही, कानपुर

२१–१०–१०

प्रणाम,

१५ ता० का कृपा-कार्ड मिला। नाशङ्कसे विलज्ज सेवामें आपकी कौन भूल है ? छापेख़ानेके भूतोंने भूलकी होगी। उसके लिए क्या चिन्ता है ? सम्मेलनमें मैं नहीं गया। रहा तो फीका ही पर सभाको रुपया कुछ मिल गया।

अच्छा हुआ। मुझे आज दिनसे ज्वर, कफ़, खाँसी आदि तंग कर रहे हैं। आज कुछ आराम है। काशीवासकी इच्छा हो तो माकूल तनख्वाह पर सभाके कोषका काम दिलवा दें।

भवदीय
म० प्र०

[५५]

जूही, कानपुर
३–११–१०

प्रणाम,

आपको एक बात कल लिखना भूल गये। जनवरीसे 'सरस्वती'का पाश फिर हमारे गलेमें कुछ समयके लिए पड़ेगा। हमारी तबीअत ठीक नहीं, लिख-पढ़ नहीं सकते। आप हमारे संकटको कम कीजिए। दो-एक लेख भेजिए, शीघ्र। हीलाहवाला न कीजिएगा। "यावद्गतं न च जहाति"। यही समय सहायताका है। कालिदासकी कविताकी खूबियाँ दिखलाइए। लिखिए क्यों उसकी इतनी प्रशंसा है। सोदाहरण। उनकी उपमाओं पर कुछ लिखिए। या जो आपके जीमें आवे।

भवदीय
म० प्र०



श्री मैथिलीशरण गुप्त

श्री मैथिलीशरण गुप्तजीका जन्म झांसी ज़िलेके चिरगाँव नामक कसबेमें संवत् १९४३ में हुआ। इनके पिताका नाम लाला रामशरण गुप्त था। गुप्तजीने सम्पन्न घरमें जन्म लिया। यही नहीं, इनका परिवार संस्कृत रुचिका भी था। इनके पिता वैष्णव भक्त और कवि भी थे।

श्री मैथिलीशरण गुप्तजी आज राष्ट्रकविके रूपमें प्रख्यात हैं। राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसादजीने उन्हें राज्यपरिषद्का सदस्य भी बनाया है। "भारतभारती", "साकेत", "यशोधरा" आदि अनेक उनके प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ हैं। इस युगमें हिन्दीके सबसे प्रसिद्ध कवि यही हैं।

श्री मैथिलीशरण गुप्तजीका पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीसे बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। द्विवेदीजी उनके गुरु थे। गुरु-शिष्यका पत्र-व्यवहार भी बहुत हुआ था। इन पत्रोंका साहित्यिक महत्त्व भी बहुत है। गुप्तजीके पास द्विवेदीजीके कुछ पत्रोंका संग्रह भी था, जिसे उन्होंने 'भारतकला भवन' काशी, को दे दिया। इन्हीं पत्रोंमेंसे छाँटकर महत्त्वपूर्ण पत्र यहाँ दिये जा रहे हैं।

[भारत कला-भवन, का० हि० वि० के सौजन्यसे]

[५६]

जूही, कानपुर
१—१—०९

प्रियवर बाबू मैथिलीशरण,

कृपापत्र मिला। कविता-कलापकी कापी हम ३—४ दिनमें इण्डियन प्रेसको भेज देंगे। आपकी शेष कविताएं जब हो चुकेंगी, तब उन्हें भी पीछेसे भेज देंगे। रविवर्माके †गंगावतरण और रामचन्द्रके ❀गंगावतरण पर भी १०—१० पद्य आप लिख दें तो इन चित्रोंका उद्धार हो जाय। हम अपना एक चित्र यहाँ बनवाकर छपने भेजेंगे। अभी निश्चय नहीं है।

'द्रौपदी-दुकूल' फरवरीमें निकलेगा।

भवदीय
म० प्र०

[५७]

दौलतपुर,
डाकघर भोजपुर, रायबरेली
१८—१—०९

प्रियवर बाबू मै० श०,

हमारे बहनोईका ६ फरवरीको शरीर छूट गया। वही हमारे घर पर रहते थे। अब उसे हम उजाड़ समझते हैं। इसीसे यहां आना पड़ा। ८—१० दिनमें कानपुर लौटेंगे। गर्विता नाम बुरा नहीं। सगर्वासे अच्छा है। कविता भी मज़ेकी है। ज़रा सरलताका ध्यान रक्खा कीजिए जिसमें पढ़ते ही मतलब समझमें आ जाय। कविता-कलाप छपने गया।

---

† शंकरकी जटाओंसे। ❀ धुरन्धरकृत।

अवशिष्ट कविताएं यथासम्भव शीघ्र भेजिए। आपकी कविताओंके प्रूफ़ हम आपको भेजेंगे। उन्हींमें जो संशोधन चाहिए कर दीजिएगा। केशों की कथाकी समालोचना पं० श्यामनाथने भेजी है। अच्छी है छपेगी।

भवदीय

म० प्र०

[५८]

जूही, कानपुर

२५–१–०९

प्रियवर बाबू मैथिलीशरण,

मा० कृष्ण ७ का पत्र मिला। "गर्विता" में स्वामी मेरे वचन कर दिया। जिन २५ कविताओंके नाम आपने लिखे वे सब कविता-कलापमें छपेंगी। सीताका पृथ्वी-प्रवेश और रामचन्द्रका गंगावतरण भेज दीजिए। औरों पर (गंगावतरण और महानन्दा पर) जी चाहे लिखिए जी चाहे न लिखिए। चित्रोंके नीचेके पद्य अलग-अलग काग़ज़के टुकड़ों पर लिखकर भेज दीजिए। महानन्दा कल्पित नाम है। जो भाव चित्रसे निकलता हो वही ठीक है। चित्र-चर्चा उत्तम विषय है। उस पर लिखिएगा। एप्रिलमें एक रंगीन चित्र निकलेगा (कर्ण-कुन्ती), कविताके लिए उसे अगले महीने भेजेंगे।

भवदीय

म० प्र०

[५९]

दौलतपुर

११–३–०९

प्रियवर बाबू मैथिलीशरण,

कार्ड मिला। कुमार-सम्भवसारका अनुवाद उर्दूमें नहीं हुआ, जहाँ

तक हम जानते हैं। किसीको अनुमति भी हमने नहीं दी और न देनेकी इच्छा है। कल या परसों आपको एक पत्र भेज चुके हैं।

भवदीय

महावीरप्रसाद

[६०]

इलाहाबाद

२२—६—१९०९

प्रियवर बाबू मैथिलीशरण

दो रोज़के लिए हम यहाँ आये हैं। एक आध दिन में दौलतपुर, भोजपुर, रायबरेली वापस जायेंगे। तोतेवाली कविता यहाँ लोगोंको बहुत पसन्द आई। प्रेसके मालिक उसे सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। परन्तु ज़माना नाज़ुक बड़ा है। लेखोंका कुछका कुछ अर्थ लगाया जाता है। इससे निश्चय यह हुआ कि यह कविता अभी कुछ दिन न प्रकाशित की जाय। आशा है आप इससे खिन्न या अप्रसन्न न होंगे।

"उत्तरासे अभिमन्युकी विदा" कविताके अन्तमें आपने जो अभिवचन दिया था उसे अब शीघ्र पूर्ण कीजिए। अगस्तकी सर०में उत्तरा और अभिमन्युका रंगीन चित्र निकलेगा। चक्रव्यूहके भीतर युद्ध करके अभिमन्यु मारे गये हैं। उनके शवके पास बैठी हुई उत्तरा विलाप कर रही है। चित्र कलकत्ते गया है। आने पर भेजा जायगा हमने भी नहीं देखा। प्रेसवालोंसे पूछकर चित्रकी स्थिति आदिका वर्णन लिख भेजेंगे। तब तक आप लिखना शुरू कीजिए। व्यूह-भेदन और युद्धमें अभिमन्युकी बहादुरीका कुछ हाल लिखकर उत्तराका विलाप लिखिए। विलाप हीकी प्रधानता रहे। खूब कारुणिक बनाइएगा।

छोटे लड़कोंके लिए दो एक सचित्र कविता-पुस्तक छोटी-छोटी इण्डियन

प्रेसके मालिक लिखाना चाहते हैं। उनके नमूने विलायतसे मँगाये गये हैं। उसी तरहकी हिन्दीमें लिखना है। क्या १००-२०० लाइनें आप भी लिख सकेंगे? पुरस्कार देनेको कहते हैं। हमारी समझमें लेनेमें कुछ हर्ज नहीं। विलायतमें बड़े-बड़े लोग लेते हैं। योंही आप लिखना चाहें तो योंही लिख दीजिए। पं० नाथूरामने लिखना स्वीकार किया था। पर अबतक कुछ नहीं लिखा।

शुभेच्छु
म० प्र० द्विवेदी

[६१]

दौलतपुर,
भोजपुर, रायबरेली
२८-६-०९

प्रियवर बाबू मैथिलीशरण गुप्त,

प्रयागसे हम लौट आये। वहाँसे हमने एक पत्र आपको भेजा है। पहुँचा होगा। 'पञ्जरबद्ध कीर' अभी कुछ दिन न छापेंगे। यही फैसला हुआ है। न छापना ही अच्छा है। "हरिणोक्ति" आपने अच्छी लिखी। बड़ा अच्छा अवसरोपयोगी पद्य है। हम तद्गत उक्तिको यथार्थ समझते हैं। कभी जीमें आवे तो ऐसी ही दस-पाँच अन्योक्तियाँ आप भी लिखिए—पर नई नई। अभी यहाँ गाँवमें कोई एक महीना रहनेका विचार है। आपकी सलाह बहुत अच्छी है।

भदैनीके रामजीसहायको नहीं जानते। आप इन अपरिचित लोगोंके कहने पर ध्यान न दीजिए। कविता-कलापको छापकर कुछ दिन बिकने दीजिए। उसकी मांग आप हीकी कविताके कारण होगी। बड़ी विशाल पुस्तक निकलेगी। १०—१५ दिनमें तैयार हो जायगी। दाम कोई २॥) होंगे। आपकी कविता अलग छपनेसे उसकी मांग कम हो जायगी। प्रेस

वालोंको घाटा होगा। उन्होंने बहुत रुपया उसके छापनेमें खर्च किया है। तब तक आपकी दस पांच कविताएं और तैयार हो जायँगी। फिर हम उन सबको एकत्र पुस्तकाकार छापनेके लिए इंडियन प्रेससे कहेंगे। आप औरोंके कहनेमें न आइए। 'भारत-मित्र'ने आपकी रत्नावली कविताको क्लिष्ट बताया है। उसका नोट आपने देखा ही होगा। "स्वर्ग-सहोदर" की हम राह देख रहे हैं। सरल होनी चाहिए।

भवदीय

म० प्र०

[६२]

जूही, कानपुर

१४—५—१०

प्रियवर बाबू मैथलीशरण,

कृपा-पत्र मिला। आपको आंखोंका हाल सुनकर दुख हुआ। उनकी रक्षाका खूब ख्याल रखिये। आशा है अब अच्छी हो गई होंगी।

राजा रामपालसिंह हमारे ही ज़िलेके हैं। कुछ दिनोंतक हम और वे रायबरेलीके एक ही स्कूलमें पढ़ते थे। उनका चरित्र भी हमने उनके एक मित्र राजाके कहनेसे छापा है। पर एक दफ़े पहले हमने एक पत्र लिखा था। उसकी पहुँच तक उन्होंने न लिखी। उनके प्राइवेट सेक्रेटरी तिलकसिंहने—एक लम्बा लेख हमारे पास छपने भेजा था। अच्छा न था। इससे हमने उसे नहीं छापा। इसीसे शायद राजा और राजसेवक दोनों अप्रसन्न हो गये। यह पत्र 'क्षत्रिय मित्र'के एडीटरने या तो लिखा है या तिलकसिंहने—राजासाहबके हाथका लिखा हुआ नहीं जान पड़ता। आप जो मुनासिब समझें उत्तर दे दें। या चुप रहें।

खड्गविलास प्रेस वालोंने हमें उस विषयमें कुछ नहीं लिखा। कल 'रंगमें भंग' पुस्तक एक पंजाबी महात्माको हमने सुनाई। सुनकर बड़े ही प्रसन्न हुए।

संयोगिनी और वियोगिनी पर कविता करना उचित नहीं। 'सरस्वती'में उनपर कविता छपना और भी अनुचित है।

गोबर्धन-धारणपर लिखिए। हमने कई दफ़े इण्डियन प्रेससे कई चित्र बनानेके लिए कहा। कोई शकुन्तलाके सम्बन्धमें था, कोई था कुमार-सम्भवमें वर्णित पार्वतीके विषयमें। पर नहीं बन सके। उस समय महाभारतके चित्रोंकी धूम थी। आप उनको लिखिए। अब शायद फ़ुरसत हो और आपकी सूचनाके अनुसार चित्र बन सकें।

बुन्देलखण्डकी घटनाओंके आलम्ब पर अवश्य कविता लिखिए। दूर राजपूताने जानेकी ज़रूरत नहीं। कभी फ़ुरसत मिले तो सीताका वनगमन, भरतमिलाप, अशोक-वनमें सीता और रावणकी बातचीत आदि विषयों पर भी कुछ लिख डालिएगा।

तबीअत हमारी पहलेसे कुछ अच्छी है। ३ जून तक दौलतपुर जानेका विचार है—२ महीनेके लिए।

शुभेच्छु
म० प्र० द्विवेदी

नोट—

१ जूनको मैं बहुत करके अपने गाँव चला जाऊँगा। अजमेरीको लिख दीजिए ३१ मईके बाद यहाँ आनेका कष्ट न उठावें।

इसे देख लिया। ध्यानसे। यत्र-तत्र पेंसलके निशान और सूचनाएँ देख जाइए। उत्तम काव्य है। उत्तरार्द्ध और पूर्वार्द्ध करनेकी अपेक्षा ७ सर्गोंमें विभक्त करना अच्छा हुआ। एक खासा काव्य हो गया। इसमें कहीं-कहीं पर क्लिष्टता खटकती है। यथासम्भव उसे दूर करनेका यत्न कीजिएगा। नहीं तो टिप्पणियाँ दे दीजिएगा।

'मेघनाद-वध' बड़ा ही ओजस्वी काव्य है। १० सर्गसे कममें है। याद तो ऐसा ही पड़ता है। गीतिमें बंगलाके प्रसिद्ध कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने गाने योग्य कविता की है। उसमें ६ राग हैं—पीलू, जांगड़ा, मलार, धनाश्री आदि। विषय अनेक हैं। इन्होंने तो नाट्य-नियमोंके अनुसार इसकी रचना की है। औरोंकी बात मालूम नहीं।

वैदेहीका वनवास आदि फिर कभी खूब फुरसतके वक़् लिखिएगा। अभी आप और जो कुछ चाहें लिखें।

राजपूतानेकी घटना पर भी काव्य लिखिए। एक बातका विचार रखिएगा। भाषा सरल हो। भाव सार्वजनीन और सार्वकालिक हो। सब देशोंके सब मनुष्योंके मनोविकार प्रायः एक-से होते हैं। काव्य ऐसा होना चाहिए जो सबके मनोविकारोंको उत्तेजित करे—देश-कालसे मर्यादा बद्ध न हो। ऐसी ही कविता अमर होती है।

शुभेच्छु

२२–५–१० म० प्र० द्वि०

[६३]

जूही, कानपुर

१–६–१०

प्रियवर बाबू मै० श० गुप्त,

कलका कार्ड मिला। चौथा चरण अनुचित है। तीसरेका उत्तरार्ध भी खटकता है। 'दैया' शब्द भी साधु भाषामें अच्छा नहीं लगता। इस पद्य ही को जाने दीजिए। आज एक काम लग गया। कल शामकी गाड़ीसे प्रस्थान है।

भवदीय

म० प्र० द्वि०

[६४]

जूही, कानपुर
२७–३–११

प्रियवर बाबू मैथिलीशरणजी,

राजा साहबकी चिट्ठी पढ़ी। मुसद्दस हमारे पास था। क्यों उन्हें कष्ट दिया। ज़रूर ऐसा काव्य लिखिए। पर तबीअतको संभालकर। आपने राजा साहबका जो पत्र भेजा है, उसका जिक्र न करके हम भी राजा साहबको धन्यवाद देंगे—उनके ऐसे साधु-भावपर। मुसद्दसको सुनिए, उसीसे (आपको) सामग्री मिल जायगी।

४ एप्रिलको, हम दो महीनेके लिए गाँव जायँगे।

भवदीय
म० प्र० द्वि०

[६५]

जूही, कानपुर
३०–३–११

प्रिय बाबू मैथिलीशरणजी,

सुकवि-सङ्कीर्तन मईमें छपेगा। स्वर्गीय-संगीतका उठान अच्छा है। लिखिए। पूरा कर दीजिए। भेजा हुआ अंश जूनमें निकलेगा। ग्राम्य जीवन भी लिखिएगा। उसके जीवनको अधिक सचेतन करनेकी चेष्टा कीजिएगा।

राजा साहबका पत्र अपने पत्रोंके ढेरमें हमने डाल दिया है। ढूँढ़ा, नहीं मिला। एक-एक चिट्ठी देखनेसे उसका पता लग सकेगा। जैसा कहिए किया जाय। राजा साहबकी सुरुचिकी हमने प्रशंसा की है। यह भी लिख दिया है कि मुसद्दसके सदृश कविता इस समय छापेगा कौन और

लेखककी रक्षा भी कौन करेगा। पं० गिरिधर शर्माकी कविताएँ आपने जल्दीमें देखीं। दो घंटे हमारे खर्च हुए। फिर भी मनकी नहीं।

दवाके बिगड़ जानेका दुःख है। अब कष्ट न उठाइएगा। फिर देखा जायगा।

भवदीय
म० प्र० द्वि०

[६६]

दौलतपुर
१९-४-११

आशीष,

१४ ता० का पत्र मिला। शकुन्तलावाली कविता छपनेके लिए भेज दी। उस पद्यमें "वंश-व्याधियाँ" पाठ ठीक रक्खा है।

मुसद्दसको किसी मौलवीसे ज़रूर सुनिए और समझिए। हरिगीतिका छन्द बुरा नहीं। कविता खूब ओजस्विनी और यथास्थान कारुणिक होनी चाहिए। सँभल-सँभल लिखिएगा। देरी हो तो हर्ज नहीं। नमूनेके लिए थोड़ी 'सरस्वती'में पहले छापेंगे।

बुद्धको आपहीने अवतार माना है। वेदोंको भी आपहीने ईश्वर कृत मान रक्खा है। ईश्वरके यहाँसे इन विषयोंमें कोई दस्तावेज़ हम लोगोंके पास नहीं। जब यज्ञोंमें पशुहिंसा अधिक होने लगी तब समझदार आदमी घबराये। वे सुधारकी बातें सोचने लगे। ऐसोंमें बुद्ध सबसे बढ़कर निकले। उन्हें अपने काममें कामयाबी हुई। इससे वे अवतार मान लिये गये। पशुहिंसा कम हो गई। परन्तु पशुहिंसा वेदोक्त है। और वेद ईश्वर कृत माने गये हैं। अतएव उनकी प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रखनेके लिए शंकराचार्यको बौद्धमतका खण्डन करना पड़ा।

दत्तका इतिहास सभासे मँगा लीजिए। उससे पुरानी बातें बहुत कुछ मालूम हो जायँगी। और कोई पुस्तक हिन्दीमें नहीं। राजस्थानके आदिमें भी कुछ हाल है।

सुलोचनावाली कविताकी हस्तलिखित कापी यहाँ हमारे पास नहीं। नहीं कह सकते क्यों हमने परिवर्तन किया। छन्दोभंग नहीं है।

भवदीय
म० प्र० द्वि०

[६७]

दौलतपुर
२७-८

आशीष,

'भारत-भारती'का कोई अंश (२०-२५ पद्य) सरस्वतीमें छपनेके लिए भेजिए।

३ सितम्बर तक कानपुर जानेका विचार है।

भवदीय
म० प्र० द्वि०

[६८]

उत्तरमें निवेदन

यहां हमारे पास कोई पुस्तक नहीं जिससे पारसियोंके आनेका समय बतावें। कैफ़ीका कहना ठीक है। मुसलमानोंने पारसियोंपर अत्याचार आरम्भ किया—मरो या मुसलमान बनो। बहुत थोड़ेसे पारसी अत्याचार से पीड़ित होकर हिन्दुस्तानको भाग आये। उन्हें शायद गुजरातके किसी हिन्दू राजाने शरण दी। ३ सित० को कानपुर जानेका विचार है। वहाँ किताबें देखकर सही-सही हाल लिख सकेंगे।

२८-८-१२ **म० प्र० द्वि०**

[६९]

जूही, कानपुर
८—९—१२

आशीष,

'भारत-भारती'की समाप्तिका समाचार सुनकर बड़ी ख़ुशी हुई। फ़ुरसतमें दुहरा-तिहरा कर छपाइएगा। फ़ारसमें पहले पारसियोंका राज्य था। तीसरे ईसदीगिर्द राजाके समयमें अरब लोगोंने उस पर चढ़ाई की और उनके मन्दिर आदि तोड़-फोड़ डाले। मरो या मुसलमान हो—यही शर्त थी। लाखों पारसी मारे गये। करोड़ों मुसलमान हो गये। हज़ार पाँच सौ बच रहे। हज़ारों भारतकी तरफ़ भागे। करोड़ों मुसलमानोंने पीछा किया। भारत पहुँचते-पहुँचते बहुत थोड़े रह गये। यहां वे खंभात की खाड़ीमें ड्यू (Deu) नामके बन्दरगाहमें उतरे। १९ वर्ष वहां रहकर वे संजान नामक नगरको ७१७ ई० के लगभग आये। वहाँ उस समय यादव राना नामक हिन्दू राजा था। उससे रक्षाकी प्रार्थना की। उसने प्रार्थना स्वीकार की और संजानमें पारसियोंको बसने दिया। संजान इस समय उजाड़ है।

भवदीय
म० प्र० द्वि०

[७०]

बरेली
१९—९—१२

आशीष,

आपकी तबीअतका हाल सुनकर दुःख हुआ। ईश्वर कुछ मुझसे ऐसा रूठा है कि वह मेरे सहायक मित्रोंको भी नीरोग नहीं रहने देता। मेरा

चित्त बहुत विषण्ण था। इससे ४–५ दिनके लिए बाहर घूमने निकल आया हूँ। पहली अक्टोबर तक कानपुर लौट जाऊँगा।

विनयकी कविता आप सीधे प्रेसको भेज दीजिएगा।

भवदीय
म० प्र० द्वि०

[७१]

जूही, कानपुर
२३–१०–१२

आशीष,

शुकलाल पांडेकी कविता मिली। आपने बड़ी कृपा की जो इसका संशोधन कर दिया। 'भारत-भारती'में हेडिंग्स हों तो सब कहीं हों। न हों तो कहीं नहीं। बेहतर तो यही है कि हेडिंग्स आप सर्वत्र कर दीजिए।

शुभैषी
म० प्र० द्वि०

[७२]

जूही, कानपुर
११–११–१२

श्रीयुत बाबू मैथिलीशरणजी,

आशीष। चिट्ठी मिली। वह मासिक पुस्तक भी मिल गई। बड़ी कृपा होगी, नया काव्य बनाकर भेजिए। जनवरीसे छापूँगा। प्रतिज्ञाबद्ध होना अच्छा नहीं। जनवरीमें उस काव्यका प्रथमांश छापकर उसी संख्यामें जो कुछ लिखना होगा, लिख दूँगा। नहीं जैसा कहिए, करूँ। सियारामशरण जीका काव्य भी भेजिएगा।

कल मुरादाबादके पं० ज्वालादत्त शर्मा आये थे। बड़े काव्य-प्रेमी और रसिक हैं। आपकी कविताओंकी बड़ी प्रशंसा करते थे। अपने पिताके

सम्बन्धमें श्रीधरजीकी लिखी विशेषणावली छापनेके कारण मुझे बहुत फटकारा।

पण्डित रामजीलालने इण्डियन प्रेस छोड़ दिया। वहीं निजका छापाखाना किया है।

शुभैषी
म० प्र० द्वि०

[७३]

जूही, कानपुर
२७–११–१३

श्रीयुत मैथिलीशरणजी,

जयद्रथ-वधकी जिल्द-बँधी कापी मिली। बड़ी सुन्दर जिल्द है। जिल्दपर जो फूल या चक्र है उसे देखनेसे आपके मोनोग्राम (नामाक्षरों) का भ्रम होता है। कल एक कार्ड आपको भेज चुका हूँ।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[७४]

दौलतपुर
२१–१२–१३

आशीष,

१७ ता० का कार्ड मिला। बौद्ध-धर्मविषयक आपका अनुवाद अवश्य प्रकाशित करूँगा। उसके नीचे मैंने अभी तो आपका ही नाम लिख दिया है। जो कल्पित नाम आप देना चाहें बताइए। मैं वही लिख दूँगा।

शुभाध्यायी
म० प्र० द्विवेदी

[७५]

दौलतपुर
२४–१२–१३

श्रीयुत बाबू मैथिलीशरणजी,

आशीष। पाञ्चाल पण्डिताकी कापी मिली। वे पद्य तो मेरे ही लिखे मालूम होते हैं। पर कब और कहाँ छप चुके हैं, याद नहीं। लाला देवराज को लिखता हूँ कि इस कवियित्रीके कान पकड़ें।

७, ८ जनवरी तक कानपुर लौट जानेका विचार है।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[७६]

जूही, कानपुर
३१–१०–१३

प्रियवर बाबू मैथिलीशरणजी,

टालस्टायका वह अधूरा पत्र मेरी समझमें पत्रावलीमें रखने योग्य नहीं। तरुदत्तके फ्रेंच भाषाके पत्रका पता मुझे मालूम नहीं।

स्वामी रामतीर्थ नामक पुस्तकके प्रथम भागमें उनका कोई पत्र नहीं। इसीकी समालोचना 'सरस्वती'में निकली है।

लाहौरमें एक महाशय औरंगज़ेबके पत्रोंका अनुवाद हिन्दीमें कर रहे हैं। उनका नाम और पता है :—हरिवल्लभशर्मा बी० ए०, मूलचन्दकी कोठी, अनारकली, लाहौर। सरस्वतीमें छपाने कहते हैं। मैंने नमूनेका एक पत्र माँगा है। इन पत्रोंमें दो-एक आपकी पत्रावली योग्य अवश्य होंगे। मुझे मिले तो मैं आपको भेज दूँगा। बेहतर होगा आप इनसे स्वयं पत्र-व्यवहार करें।

विवेकानन्दके जो पत्र पुस्तकाकार हिन्दीमें निकले हैं, उनमेंसे एक आधको लीजिए। शायद पं० लक्ष्मीधरने उनका अनुवाद किया है। मेरे पास पुस्तक नहीं आई। पं० श्रीधर पाठककी कविताकी कल्लोलोंसे 'मर्यादा' उमड़ रही है। हालकी संख्यामें तीन कविताएं निकली हैं। उनकी जैसी कविता होती है वैसी ही ये भी हैं। सरस्वतीका पद्य भाग अब बहुत ही कमज़ोर हो चला है। हमारी दौड़ सिर्फ़ आप तक है। आप न लिख सकें तो बा० सियारामशरण ही को तैयार कीजिए। हर महीने एक उनसे भिजवाइए। परसोंसे मुझे जुकाम है। ज्वरांश हो रहा है। आशा है आपकी तबीअत अब सुधर चली होगी।

शुभैषी
म० प्र०

[७७]

जूही, कानपुर
१६–१–१४

प्रियवर मैथिलीशरणजी,

आशीष। बाबू वृन्दावनलालका पत्र पढ़ा। मुझे इतनी गालियाँ दीं; उससे मेरा क्या बिगड़ा? करने दीजिए समालोचना, देने दीजिए गालियाँ। उस भावी समालोचनाका उत्तर जनवरीकी सरस्वतीमें पहले ही निकल जायगा। "सभ्य समालोचक" कविता पढ़िएगा। आप एक हफ़्ते तक और काम बन्द कर दीजिए। अन्योक्तिपरक एक ख़ूब चुटीली कविता लिखिए। उर्दू-मिश्रित भाषामें। उसमें इन लोगोंकी ख़बर लीजिए तो अच्छा हो।

आपके मित्रकी दोनों आख्यायिकाएँ छापनेके इरादेसे रख ली हैं। अवनीतलबद्धतिशील—वैसे ही रहने दिया है।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

गोपनीय

उस गालीगलौजके लेखक हैं शिवसागर पाण्डे एम० ए०, एल-एल० बी०, म्यूरकालेजके एक अध्यापक। कानपुरके रहनेवाले २५ वर्षके विद्वान्। मेरे पूर्व मित्र जो मेरी बीमारीके समय मेरी जगह—सम्पादककी—माँगते थे।

[७८]

जूही, कानपुर
१७—२—१४

आशीष,

दक्षिण अफ़रीका, कनाडा और आस्ट्रेलियामें भारतीय प्रवासियों और निवासियोंकी जो दुर्दशा हो रही है, आप जानते ही हैं। उस विषय पर दो एक कविताएँ लिखिए। समय-सूचकता बड़ा भारी गुण है। समयानुकूल कविताका बड़ा असर होता है।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[७९]

दौलतपुर,
भोजपुर, रायबरेली
१८—४—१४

प्रियवर बाबू मैथिलीशरणजी,

मैं यहाँ कल आया। पैकेट, आपका भेजा हुआ, परसों कानपुर ही में मिल गया था।

अहिल्याबाईका पत्र बहुत पसन्द आया। बड़े महत्त्वका है। यह तो और भी बड़ा होना चाहिए था। विचार-विस्तारके लिए बहुत जगह थी।

मईकी सर० में छापूँगा । नीचे लिखे अनुसार उसमें शोधन करना चाहता हूँ । ठीक न हो तो आप कर दीजिए :—

१. पद्य २ पंक्तियां २–३ विख्यात वीरे करते जिससे विरोध होता किसे—

२. पद्य ३ चरण ३—दूँ आपको अब न जो शत साधुवाद ।

३. पद्य १३ चरण १—वीराग्रगण्य यह भी अब सोच लीजे ।

४. पद्य १५ चरण ४—फिर सोचिये किसलिए इतना अनर्थ ।

पद्य ५ में—हैं भूलते सुमति भी सब एक बार—यह खटकता है । कोई नियम नहीं कि सभी सुमतिवाले भूलें और एक ही दफ़े भूलें ।

पद्य ६—सैन्य शब्द पुलिंग हो तो अच्छा ।

पद्य ९—डरना किस पापसे चाहिए ।

कविता छपने भेजता हूँ । संशोधन करना हो तो पद्योंका हवाला देकर लिख भेजिए । वही पत्र प्रेसको भेज दूँगा । व्यायोगका अनुवाद अच्छा है । सही है । पद्य भाग तो बहुत ही अच्छा है । आपने पद्यमें मूलका बड़ी हठतासे अनुसरण किया है । यह ठीक नहीं । उसके शब्दार्थ की परवाह न करके उसके भावोंका ही अनुवाद होना चाहिए । वह भी बामुहाविरा हिन्दीमें । जितं जितं का आप जीते आप जीते—हिन्दीका मुहाविरा नहीं । गद्यकी हिन्दी इसी कारण बहुत क्लिष्ट हो गई है । मुनासिब समझिए तो गद्य भागका संशोधन कर दीजिए । दो ही चार घंटेका काम है । सरल बामुहाविरा हिन्दी कर देनेसे बड़ी अच्छी पुस्तक होती । मैं सर०में छापूँगा । जितनी कापियाँ दरकार हों पुस्तकाकार ले लीजिएगा ।

भवदीय

म० प्र० द्विवेदी

[८०]

दौलतपुर

२७-४-१४

प्रियवर बाबू मैथिलीशरण गुप्त,

२३ का पत्र पहुँचा। अहिल्याबाईके पत्रमें इस प्रकार संशोधन कर दिया:—

पद्य ५—जो भूल हो उचित है उसका सुधार।

पद्य १५—तो सोचिए किसलिए इतना अनर्थ।

पद्य ६—सैन्य स्त्रीलिंग ही रहने दिया।

पद्य ६—'पापको' भी रहने दिया।

पद्य २-३-१३ में अपने किये संशोधन रहने दिये।

पद्य १५ में 'तो' की जगह 'फिर' करना मेरी भूल थी। मेरा बुद्धि-वैकल्य अब दिन पर दिन बढ़ रहा है।

शुभैषी

म० प्र० द्विवेदी

[८१]

दौलतपुर

२५-७-१४

प्रियवर बाबू मैथिलीशरणजी,

२२ का कार्ड और २३ का पत्र मिला। कविता और गीत पहुँचे, बड़ी कृपा की। धन्यवाद।

जायसवालजीकी जाति क्या है, यह बात पाटलिपुत्रके मालिकसे छिपी न थी। यदि वे ब्राह्मण ही चाहते थे तो जायसवालजीको पहले ही क्यों रक्खा। असल बात क्या है सो हम लोग नहीं जान सकते।

शिवाजी पर जो काव्य संस्कृतमें है उसका नाम शायद शिव-विजय है। बहुत वर्ष हुए तब पढ़ा था। मेरे संग्रहमें था। परन्तु जब वह लेख लिखने लगा, जिसका कि आपने हवाला दिया है, तब ढूँढ़ा तो न मिला। शायद कोई ले गया। मराठीवाली पुस्तक है। उसका पता कानपुर पहुँचकर लिखूँगा।

शुभैषी

म० प्र० द्विवेदी

[८२]

दौलतपुर

२९–७–१४

प्रियवर बाबू मैथिलीशरणजी,

२५ का पत्र मिला। साहित्य-सम्बन्धी कवितामें अभिज्ञका अविज्ञ कर दिया। शकुन्तला कविताके हेडिंगके नीचे "जन्म और बाल्यकाल" लिख दिया।

कालिदास नामकी पुस्तकमें तो नहीं, पर शकुन्तलामें शायद आपके मतलबकी बातें मिलें। बहुत समय हुआ इसे पढ़े। ठीक याद नहीं। पर पुस्तक बहुत अच्छी है। ज़रूर मँगाकर पढ़िए। कविता लिखनेमें काम न आवे न सही। निर्भयभीमव्यायोग भेजनेकी अब जल्दी नहीं। सावकाश भेजिएगा। गद्य भाग ठीक हो जाने पर।

जायसवालजीकी लीला जानी जाने योग्य नहीं। *

शुभैषी

म० प्र० द्विवेदी

* स्व० डॉ० के० पी० जायसवालसे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी-

[८३]

दौलतपुर

१३—८—१४

श्रीयुत बाबू मैथिलीशरणजी,

८ अगस्तके पाटलिपुत्रमें आपकी कविता पढ़ी। वहीं दूसरे कालममें बैरिस्टर साहबका* नोट पढ़ लीजिएगा। †...................... ग्रन्थ मालाकी समालोचनासे मतलब है। शायद दूधके नाम पानी और अनुवादकर्त्ताकी धूलभरी बुद्धिका चरणोदक आपने भी पिया है। पिया हो तो पिलानेवालेको पाटलिपुत्रके जजके सिपुर्द करके सजा दिलाइए।

भवदीय

म० प्र० द्विवेदी

[८४]

जूही, कानपुर

१९—८—१४

प्रियवर बाबू मैथिलीशरण गुप्त,

२१ का कार्ड समय पर मिल गया था। लेख भी मिल गया। जिस महीनेकी 'सरस्वती'में कहिए उसी महीनेमें छापूँ।

जीका १९०३ से मतभेद था। यह मतभेद जायसवालजीके किसी लेखको लेकर था। मतभेद सम्बन्धी जायसवालजीका १९०३ का पत्र द्विवेदीजीके नागरी प्रचारिणी सभावाले संग्रहमें है, जिसे मैंने देखा है।

*के० पी० जायसवाल।

† प्रकाशन-संस्थाका नाम जानबूझकर हटा दिया गया है। मूल पत्रमें सुरक्षित है।

मौर्य्य विजयकी कापी भी मिल गई। थैंक्स।

आर्टका समानार्थकवाची शब्द संस्कृतमें मुझे ढूँढ़े नहीं मिलता। शिल्प, शिल्प-चातुर्य्य, कला, कलाकौशल, कारीगरी आदि कह सकते हैं।

'भारत-भारती'की समालोचना पर बैरिस्टर साहबने मुझपर जो पुष्प-वृष्टि की है सो आपने देखी ही होगी। न देखी हो तो भेजूँ। मुझे एक अपमानसूचक कार्ड भेजा है कि तुमने हरप्रसाद शास्त्रीको "गाली" दी। बाबू सीतारामने नालिश भी की है। मैं चुप हूँ। न उत्तर दिया, न 'सरस्वती'में कुछ लिखनेका विचार। यह घमण्डाचार्य्य त्रिलोकके विद्वानोंको अँगूठेपर रक्खे घूमता है।

भवदीय

म० प्र० द्विवेदी

[८५]

जूही, कानपुर

३१–८–१४

आशीष,

"उत्तर" वाली चिट्ठी और इसके साथ "दुबे" वाला कार्ड दोनों चीज़ें मिल गईं। आपके घरकी बीमारीका हाल सुनकर बड़ा दुःख हुआ। न मालूम कैसी बीमारी है, अब तक नहीं दूर हुई। मैं आपके दुःखका अच्छी तरह अनुमान कर सकता हूँ। मैंने तो कोई पुण्यकार्य किया नहीं। इससे ईश्वरसे बहुत दूर हूँ। तथापि उससे मेरी प्रार्थना है कि वह आपकी चिन्ताको शीघ्र दूर करे।

शुभैषी

म० प्र० द्विवेदी

[८६]

दौलतपुर

१५—१२—१४

श्रीयुत बाबू मैथिलीशरणजी,

१३ का पोस्टकार्ड मिला। २५०) की बात मैंने किसी पत्रमें नहीं पढ़ी। किस पत्रमें छपी है? जो लोग सम्मेलनमें गये थे वे अलबत्ते मुझसे कहते थे और माँगनेवालेकी "निष्काम हिन्दी सेवा" की तारीफ़ करते थे। सम्भव है, यह अफवाह झूठ हो।

आर्य्य-समाजी अब मेरी नालायकी, खुशामद और पक्षपात यह लिख-लिखकर साबित कर रहे हैं कि नाथूराम शङ्करकी कविताको, जो आपकी कवितासे बढ़कर है; मैंने सिर्फ़ "खासी" कह दिया और आपकी कविताकी तारीफ़ में कलेजा निकालकर रख दिया।

शुभैषी

म० प्र० द्विवेदी

[८७]

दौलतपुर

१९—११—१४

श्रीयुत बाबू मैथिलीशरणजी,

आशीष। १५ और १८ दिसम्बरके कार्ड मिले। रवीन्द्रबाबूकी कविताका अनुवाद चाहे गीतोंमें चाहे अन्य पद्यमें। गद्यमें नहीं। आपको फुरसत न हो तो भाई साहब ही को करने दीजिए। "नैवेद्य" से भी कुछ अनुवाद होना चाहिए।

हिन्दी समाचार भेजनेकी ज़रूरत नहीं, "दास" महाशयके औदार्य्य की मुझे पूरी थाह है। आर्य-समाजियोंको कुत्सा करने दीजिए। उसके

कारण मैं अपने कर्त्तव्यसे च्युत नहीं हो सकता। सर्वानन्दजीकी भी पूरी कृपा है, वे आपको "ऊँचे दरजेका कवि" और मुझे अपना "गुरु" कह चुके हैं। तथापि इस समय वे और ही पाशमें बँधे हुए हैं।

शुभैषी

म० प्र० द्विवेदी

[८८]

जूही, कानपुर
१५–१–१५

आशीष,

जनवरी १५ के (कलकत्तेके) मार्डन रिव्यू (Modern Review) में औरंगज़ेबके ऐतिहासिक पत्र पढ़िए।

शुभैषी

म० प्र० द्विवेदी

[८९]

जूही, कानपुर
२०–१–१५

श्रीयुत बाबू मैथिलीशरणजी,

आशीष। १६ का कार्ड मिला। कविताका नमूना मुझे पसन्द है। पूरी करके भेजिए। कोई बात समय और सरकारके विरुद्ध न रहे। इशारा भी न रहे। कल नया क़ानून बना है। क़ानून क्या मार्शल्ला—जंगी क़ानून—है। फांसी तक की सजा है।

कविताके सम्बन्धमें आप जो लिख रहे थे उसका क्या हुआ। वह बहुत सामयिक होती। उसे पहले भेजना चाहिए। बिना आपकी कविताके 'सरस्वती' फीकी रहेगी। इसका ख्याल रखिएगा।

शुभैषी

म० प्र० द्विवेदी

[९०]

उत्तरका संक्षेप

'भारत-भारती' इस प्रशंसाके योग्य नहीं तथापि आप जैसे महानुभावों के वाक्य मेरे लिए बहुत कुछ उत्साहवर्द्धक हैं।

आप अपनी सबसे अच्छी कविता-पुस्तककी एक कापी वी० पी० द्वारा मुझे भेजिए। साथ ही भा० भा० के १० प्रारम्भिक पद्योंका गुजराती अनुवाद भी भेजिए। इस सामग्रीको देखकर मैं अपने निश्चयकी सूचना आपको दूँगा।

इनके आ जाने पर आप इन्हें पं० बदरीनाथ भट्टको भेजिएगा। वे गुजराती काव्यके अच्छे ज्ञाता हैं। यदि वे कहें कि अवस्थी जी अच्छे और प्रसिद्ध कवि हैं, तो अनुवाद करनेकी अनुमति दे दी जाएगी। Royalty उनको देनी पड़ेगी। शर्तें पीछेसे तै हो जायँगी।

कल कान्यकुब्ज स्कूलका जलसा था। लड़कोंने भा० भा० के अन्त का गीत गाया। श्रोता गद्गद हो गये। बड़ी खुशी हुई। ऐसे समयोचित गीत दो-चार और लिख डालिए।

२२–३–१५ म० प्र० द्वि०

[९१]

जूही, कानपुर

१६–४–१५

प्रिय मैथिलीशरणजी,

आशीष। चिट्ठी मिली। तिलोत्तमाकी कापी भी मिली। मेरी तबीअत आठ रोज़से अच्छी नहीं। नींद बहुत कम आती है। चित्त उदासीन रहता है। काम नहीं होता। तबीअत सुधरने पर तिलोत्तमा देखूँगा।

आठ-दस दिन बाद गाँव जानेका इरादा है। वे कौन साहब हैं जिन्होंने रद्दी भरकर आपको धोखा दिया। आपका इसमें क्या अपराध, अपने ही कर्म्मोंसे वे जल गये। आपके भाई साहब अबतक नहीं आये। मिलने पर उन्हें "बङ्ग भाषा" दे दूँगा। फाल्गुनके बादका 'भारतवर्ष' नहीं आया। अगली कापियाँ भेजनेके लिए लिखता हूँ। आप न भेजिएगा।

बार्हस्पत्यको न अब मैं कभी उस विषयमें लिखूँगा न आप लिखें। मैंने चुना चुनी एक चिट्ठी लिखी थी। उत्तर आया कि बहुत पढ़ने-लिखनेसे दृष्टि ख़राब हो गई है। कुछ नहीं लिख सकता। पेंशन लेनेके बाद लिखूँगा। जब वे पेंशन ले लें तभी आप उर्म्मिला लिखें। उसके पहले शायद उसे पढ़नेकी फ़ुरसत ही न मिले।

मोटो कोई प्रूफ़ पढ़ा तो बताऊँगा। मोटो आप ही चुनिए तो अच्छा हो। जितने आपने चुने हैं सब अच्छे हैं।

शुभैषी

म० प्र० द्विवेदी

[९२]

दौलतपुर

२५-५-१५

प्रियवर बाबू मैथिलीशरण गुप्त,

आशीष। कृषक कथाकी कापी मिली। तीन नहीं, तो दो महीनेके लिए ज़रूर काफ़ी होगी। जूनकी 'सरस्वती' कम्पोज हो रही है। अब यह कथा जुलाईसे निकलेगी, 'फीज़ी'का हाल इससे निकाल दिया, यह बहुत अच्छा किया। ज़माना फिर नाज़ुक आ गया है।

छन्द बदलनेकी अब ज़रूरत नहीं। लक्ष्मीको न पढ़ना ही अच्छा है। सिकन्दर और उस योगीपर अवश्य लिखिए। विषय बड़ा ही हृदयाकर्षक है।

हम्मीरकृत चित्तौड़के उद्धारपर भी नाटक लिखिए। यह भी अच्छा विषय है, आशा है, बाबू सियारामशरणकी तबीअत अब अच्छी होगी।

मैंने अपना हाल आपको नहीं लिखा। मेरा कौटुम्बिक जीवन विषमय हो रहा है। मेरे शरीरकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं। जिनको मैंने अपना कुटुम्बी बनाया है वे मुझे फलवान् वृक्ष समझकर डंडों और ईंटोंकी मारसे शीघ्र ही कच्चे, पक्के फल गिराकर हड़प कर जाना चाहते हैं।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[९३]

दौलतपुर
२—६—१५

श्रीयुत बाबू मैथिलीशरणजी,

आशीष। इन नीचोंकी बातोंपर ध्यान न देना चाहिए। जो लोग १६ हज़ार रुपया दे डालनेकी शक्ति मुझमें समझते हैं वे पागलके सिवा और कुछ नहीं। डरानेके लिए आप चाहे एक नोटिस भले ही भेज दें। और कुछ करनेकी ज़रूरत नहीं। इस महात्माने कई दफ़े मुझे धोखा दिया है। लिखें आप, नाम नीचे दे दें स्त्रीका।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[९४]

दौलतपुर, रायबरेली
१८—६—१५

श्रीयुत बाबू मैथिलीशरण गुप्त,

आशीष। कार्ड मिला। व्रजाङ्गनाकी कापी भी मिली। मुझे तो छपाई पसन्द है। मात्राएँ ज़रूर टूटी हैं, पर पढ़ा जा सकता है। इस

पुस्तककी जो-जो कविताएँ 'सरस्वती'में नहीं निकलीं उनके नाम लिख भेजिए। मौक़ा मिला तो 'सरस्वती'में छापूँगा। कृषक कथाका अर्धांश जुलाईमें छपने भेज दिया।

हम्मीर आदि लिखना शुरू कर दीजिए, विषय माकूल है। कल एक गाँव गया था। जनेऊ था। एक बिगड़े दिल ब्रह्मचारी मिले। शिक्षित हैं। गंगातटपर एक ब्रह्मचर्याश्रम खोल रक्खा है। आपके बड़े भक्त हैं। सारी भा० भा० कण्ठाग्र है। कहते थे—रोज़ गीताकी तरह उसका पाठ करता हूँ और शिष्योंसे कराता हूँ। कोई ५०० आदमियोंका मजमा था। अनेक लोग उनमें शिक्षित थे। भा० भा० के कितने ही अंश गाकर उन्होंने सबको मुग्ध कर दिया। मुझे जो खुशी हुई उसकी सीमा नहीं।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[९५]

जूही, कानपुर
१–४–१६

श्रीयुत बाबू मैथिलीशरणजी,

आशीष। पत्र मिला। रजिस्टर्ड पैकेट भी आ गया। 'तिलोत्तमा' बहुत ही अच्छी छपी। जैसी सुन्दर छपाई है वैसा ही सुन्दर जिल्द और काग़ज है।

'साकेत'के दोनों सर्ग धीरे-धीरे अवकाशानुसार पढ़ूंगा। तब आपकी बातोंका उत्तर दूँगा। मेरी राय है कि आप इस विषयमें मुझसे अधिक ज्ञान रखते हैं। रामायणकी ग्रन्थिल बातोंपर मैंने कभी विचार नहीं किया।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[९६]

जूही, कानपुर
१४—४—१६

श्रीयुत बाबू मैथिलीशरणजी,

आशीष। पद्य-प्रबन्धके दूसरे संस्करणकी कापी मिली। थैंक्स।

'साकेत' देखनेके लिए अब तक समय नहीं मिला। अब शीघ्र ही देखूँगा।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[९७]

जूही, कानपुर
२२—४—१६

श्रीयुत बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त,

आशीष। १६ की चिट्ठी मिली। हो सका तो 'साकेत'के दोनों सर्ग दो ही अङ्कोंमें छाप दूँगा। नहीं तो आपके लेखानुसार एक-एक अङ्कमें आधा आधा छापूँगा।

अभी मैं कुछ भी संशोधन न करूँगा। पुस्तकाकार छपानेके पहले जब आप पुस्तकको दुहरावें तब उचित संशोधन कर दीजिएगा।

एक ही छन्दका दो, तीन, चार सर्गोंमें भी महाकवियोंने प्रयोग किया है। आप भी ऐसा ही करें। जो छन्द खूब मंजे हुए हों उनका प्रयोग अधिक कीजिए। "क्षमा छाया तले नत था, निरत था"—यह छन्द बुरा नहीं। "वह पारायण, हे नारायण"—भी मजेका है। "पर श्री कमला-सी कल्याणी"—पढ़नेमें अच्छा नहीं लगता। वसन्त-तिलका, वंशस्थ, उपजाति, इन्द्रोपेन्द्रवज्रा, द्रुत०, शिखरिणी आदि भी रखिए। पर रखिए

वही जो आसानीसे बन जायँ और पढ़नेमें अच्छी मालूम हों। गणवृत्तोंकी अपेक्षा मात्रावृत्त बनानेमें कम परिश्रम पड़ेगा। क्यों न एक सर्ग सवैया छन्दमें लिखा जाय?

मेरा इरादा १ मईको दौलतपुर जाने का है। शुभाकांक्षी
म० प्र० द्विवेदी

[९८]

जूही, कानपुर
२९-४-१६

श्रीयुत बाबू मैथिलीशरणजी,

आशीष। सुहाग शब्दका जो भाव है (हिन्दीमें) वह सौभाग्यसे ठीक-ठीक व्यक्त नहीं होता। इस कारण भाग-सुहाग पाठ सुख-सौभाग्यसे अधिक उपयुक्त है।

भाग-सुहागकी जगह सुखद-सुहाग भी हो सकता है। जो पद्य आपने लिखा उसका दूसरा चरण मुझसे ठीक पढ़ते नहीं बनता। गति ठीक है न?

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[९९]

जूही, कानपुर
१७-४-१७

प्रियवर बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त,

आशीष। १४ का कार्ड मिला। अर्जुनके तरकसके विषयमें आपका बताया आशय ही ठीक है:—

"सर्वदा सर्वदोऽसीति त्वं मिथ्या कथ्यसे बुधैः।
नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः॥"

और कुशल। ८, १० रोज़ बाद दौलतपुर जानेका विचार है।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[१००]

दौलतपुर, रायबरेली
६—५—१७

श्रीयुत बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त,

आशीष। वैतालिक नाम बुरा नहीं। यही रहने दीजिए। पद्य कोमल और भाव बहुत ऊँचे हैं। पुस्तिका छपने योग्य है। छपा डालिए।

यहाँपर मेरे असिस्टेण्ट नहीं। कापी करनेके लिए मुझे समय नहीं। यदि कोई लेखक कभी आपको मिल जाय, तो १०, १५ पद्य लिखाकर भेज दीजिएगा। चुन-चुनकर जो बहुत अच्छे हों वही भेजिएगा। कापी लौटाता हूँ।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी



****

राय कृष्णदास

राय कृष्णदास काशीके प्रसिद्ध राय खानदानके हैं। ये प्रसिद्ध राजा पट्टनीमलके वंशज हैं। इनके पिता राय प्रह्लाददास भारतेन्दुजीके भांजे थे। ये काशीके प्रसिद्ध रईसोंमें थे। संस्कृत और हिन्दी साहित्यमें इनकी विशेष रुचि थी।

राय कृष्णदासजीका जन्म काशीमें सं० १९४९ में हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। १२ वर्षकी अवस्थामें ही इनके पिताकी मृत्यु हो गई। बचपनसे ही कला और साहित्यकी ओर इनकी विशेष रुचि थी। अपनी विपुल सम्पत्तिके ये मालिक भी थे। अतः थोड़े समयमें ही इनका साहित्य-जगत्के प्रसिद्ध व्यक्तियोंसे सम्पर्क और सम्बन्ध हो गया। इस कारण इनकी कलात्मक प्रतिमा का तेजीसे विकास हुआ। हिन्दीके कहानी-साहित्य और गद्य-काव्यके क्षेत्रमें इनका अपना स्थान बन गया।

राय कृष्णदासजी चित्रकलाके अपूर्व पारखी हैं। चित्रकलाका ऐसा मार्मिक आलोचक हिन्दीमें दूसरा नहीं है। भारतीय मूर्तिकला के भी यह प्रथम श्रेणीके विद्वान् हैं। कलाके प्रत्येक क्षेत्रमें आपकी दृष्टि सधी है। वस्तुतः कलाकी आराधनामें ही इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति स्वाहा कर दी। 'भारतकला भवन' इनकी सम्पूर्ण साधनाका रूप है।

****

इनकी रचनाएं इस प्रकार हैं :—

१. गद्य काव्य—साधना, छायापथ, संलाप, प्रवाल।

२. कविता-संग्रह—भावुक व्रजरज।

३. कहानी-संग्रह—अनाख्या, सुधांशु, आंखोंकी थाह।

४. कलाकी आलोचना—भारतीय चित्रकला, भारतीय मूर्ति-कला, भारतीय चित्रकला पर एक बृहद् ग्रन्थ अभी अप्रकाशित हैं।

५. चित्र-चर्चा [अप्रकाशित]।

६. इतिहास—इक्ष्वाकु वंश, भारतीय संगीत कला अभी अप्रकाशित हैं।

राय कृष्णदासजीका पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीसे घनिष्ठ सम्पर्क था। उनके पास द्विवेदीजीके बहुतसे पत्र हैं। उन पत्रोंमेंसे छाँटकर कुछ पत्रोंको यहाँ दिया जा रहा है।

[१०१]

लखनऊ
१२—३—०९

प्रिय महाशय,

२—५—०६ का कृपा-पत्र मिला। काशीमें आपसे न मिलनेका हमें भी बड़ा रंज हुआ। जी हाँ, हम हरद्वार गये थे। वहाँसे डेढ़ महीने बाद अब लौट रहे हैं। कल कानपुर चले जाएँगे। संस्कृतमें दर्शक और द्रष्टा भिन्नार्थवाचक शब्द हैं। पर हिन्दी और मराठीमें दर्शक शब्द देखने वालेके अर्थमें भी प्रयुक्त होता है :—दर्शकवृन्द, दर्शक-मण्डली आदि उदाहरण हैं। मार्चकी 'सरस्वती' पास नहीं। नहीं मालूम उसमें क्या लिखा गया है।

निवेदक
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[१०२]

जूही, कानपुर
२—१०—१०

आशीष,

कल शामको ८ बजे आपका तार मिला। उसका उसी क्षण उत्तर दिया कि मैं १२ अक्टोबरके बाद आऊँगा। आज अभी ७ बजे आपका दूसरा तार आया। आपकी आज्ञा है—"Start within next week please"।

पाठकजीसे मैं अपना हाल कह चुका हूँ। उनके चले जानेपर मुझे ज्वर आ गया। पर एक ही दिन आया। विशेष कष्ट नहीं हुआ तथापि कमज़ोरी है। मेरे एक मित्र लखनऊमें हैं। उनसे मैंने वादा कर लिया है कि दुर्गापूजाके दिनोंमें मैं उनसे मिलने जाऊँगा और ३, ४ दिन उनके यहाँ रहूँगा। मेरा इरादा था कि मैं ६ या ७ ता० को लखनऊ जाऊँ। १० को प्रयाग रहूँ। ११ को मिर्जापुर। बाद आपके यहाँ जाऊँ। आप कृपा करके यह लिखिए कि मेरे लिए काम क्या है? कल शाम तक आपको यह पत्र मिल जायगा। परसों उत्तर आप पोस्ट कर दीजिए। नरसों ५ को वह मुझे मिल जायगा। तब मैं आपको अपना निश्चय सूचित कर दूँगा। मैं सम्मेलनमें शरीक नहीं होना चाहता और न सम्मेलनके दिनोंमें काशीमें रहनेकी इच्छा है। इसीसे मैं उसके बाद आना चाहता हूँ। आपका उसके पहले ही बुलानेका क्या अभिप्राय है? सो साफ़ लिखनेकी कृपा कीजिए। यदि १२ ता० के पहले मेरे आनेसे आपका कोई काम हो सके जो कि बादमें आनेसे न हो सकता हो तो कृपा करके वैसा लिखिए। मैं नहीं चाहता कि मैं वहाँ आऊँ और लोग मुझे सम्मेलनमें जानेके लिए लाचार करें। सम्मेलनसे मेरा कोई विरोध या द्वेष नहीं। मैं उसमें इसलिए शरीक नहीं होना चाहता कि सभाके भवनपर अहातेमें वह होगा और सभा हीके कार्यकर्त्ता उसके कार्यकर्त्ता हैं। जिस सभाने मुझे सभासे हटानेकी कोशिश की और जिसके मैंने इतने दोष दिखलाये, उससे मैं अब सम्पर्क नहीं रखना चाहता। यह मेरी कैफ़ियत आपके जाननेके लिए है, प्रकाशित करनेके लिए नहीं। आप अब अपनी कैफ़ियत स्पष्टतापूर्वक लिखनेकी कृपा कीजिए। मैं ६ ता० तक आपके पत्रकी प्रतीक्षा करूँगा।

शुभैषी

म० प्र० द्विवेदी

[१०३]

दौलतपुर,
डाकघर भोजपुर, रायबरेली
२६–४–१२

आशीर्वचांसि विलसन्तुतराम्

पत्र मिला। आपकी माताकी बीमारीका हाल सुनकर दुःख हुआ। ईश्वरको धन्यवाद है जिसने नैरोग्य प्रदान किया।

पं० कृष्णकान्त मालवीयजीके जो जीमें आवे करें। हमलोग अपना कर्त्तव्य यथाशक्ति करनेमें त्रुटि न करेंगे।

आप अपने चित्र औरोंको तो देते हैं हमें क्यों नहीं देते? दो-एक देनेकी कृपा कीजिए—शीघ्र।

इलियड आफ़ दि ईस्ट पर हमने क्या लिखा था याद नहीं। आप कुछ लिखिए जिससे याद आ जाय।

मथुरा-सम्बन्धिनी कालिदासकी भूलका उल्लेख 'सरस्वती'में कर देंगे। निरङ्कुशताविषयक आपके मतभेदको हम प्रकाशित कर देंगे। शर्त यह है कि आप अवशिष्ट भूलोंको भूल स्वीकार करें और उस लेखकी उपयोगिता और अनुपयोगिता आदिपर भी कुछ लिखें। आपके पत्रके साथ आपका कोई लेख नहीं मिला।

अभी कुछ दिन मेरा विचार यहीं अपने गाँवमें रहनेका है।

भवदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[१०४]

दौलतपुर,
भोजपुर, रायबरेली
२८-४-११

आशीष,

मुझे इस लेखके छापनेमें ज़रा भी उज्र नहीं। पर मेरी राय है कि आप इसे अभ्युदय या हितवार्ताको भेज दें। ऐसा करनेसे इसका महत्त्व बढ़ जायगा। लोग जानते हैं कि मुझसे और आपसे स्नेह है। अतएव आपकी कृत प्रशंसा 'सरस्वती'में ज़रा कम अच्छी लगेगी। एक बात और है। मईकी 'सरस्वती' छप चुकी। जूनकी निकलनेमें अभी सवा महीनेकी देरी है। अतएव तबतक इस लेखको ठहरना पड़ेगा। पूर्वोक्त पत्रोंमें भेजनेसे शीघ्र ही निकल भी जायगा और प्रभाव भी इसका अच्छा होगा। यदि आपको मेरा कहना अच्छा न समझ पड़े तो रघुवंशके उन श्लोकोंको लिखकर लेख लौटा दीजिए। मैं 'सरस्वती'में ही छाप दूँगा। रघुवंश यहाँ मेरे पास नहीं। पुरानी 'सरस्वती' भी नहीं।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[१०५]

दौलतपुर,
डाकघर भोजपुर, रायबरेली
३०-७-११

आशीष,

आपके दोनों कार्ड मिले। मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। हितचिन्तनाके लिए अनेक धन्यवाद। मेरे कुटुम्बमें कोई दस आदमी हैं। वे सब मेरे आश्रित हैं। मैं इस फ़िक्रमें हूँ कि कोई काम ऐसा करूँ जिससे उन लोगों

को कोई कष्ट न हो। उनकी जीविका चलती रहे। इसका प्रबन्ध हो जानेपर साहित्यके कार्यसे किनाराकश हो जाऊँगा। तबतक किसी तरह चलाना ही पड़ेगा।

शुभाध्यायी
म० प्र० द्विवेदी

[१०६]

Commercial Press
Cawnpore.
२२ फरवरी १९१२

आशीष,

कौटिल्य-कुठार मिल गया। पोस्टकार्ड भी मिला। आशा है आपकी तबीअत दिन पर दिन अच्छी होती जायगी।

मैंने अपने एक मित्रके साझेमें एक छोटा-सा प्रेस कर लिया है। अंगरेज़ी, हिन्दी, उर्दू तीनों भाषाओंमें काम होता है। यदि आपका या आपके मित्रोंका मैं कोई काम कर सकूँ तो याद कीजिएगा। कृपा होगी।

शुभैषी
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[इसीके साथ]

लीजिए,

न्याय करो तो निबाह नहीं पै दया जो करो तो हया रहती है।

१९–३–१२ **म० प्र० द्विवेदी**

[१०७]

दौलतपुर, रायबरेली
२६–६--२०

आयुष्मान्,

पो० का० मिला। आम-काम कुछ न भेजिए। विपत्तिग्रस्त हूँ। १६ जूनकी रातको मेरे घर यहाँ चोरी हुई। नक़द, जेवर, कपड़े, बर्त्तन कोई २०००) का माल उठ गया। यहाँ और था ही क्या। १० रोज़ हुए न चोरीका पता न चोरोंका। जूता टोपी तक मेरी गई। धोती मात्र रह गई। नंगा बैठा हूँ। कुटुम्बियोंकी प्रायः यही हालत है। कानपुरसे पहननेके कपड़े मँगाने हैं। मैं शान्त हूँ। संसार ही नाशवान है, चीज़-वस्तुकी कौन बात। पर कुटुम्बियोंको बहुत कष्ट हुआ है।

शुभानिध्यायी
म० प्र० द्विवेदी

[१०८]

दौलतपुर, रायबरेली
८ जुलाई २०

आयुष्मान,

आपके पत्रके उत्तरमें मैंने एक पोस्टकार्ड भेजा था। कोई एक हफ्तेसे अधिक हुआ। उसमें चोरीका हाल भी लिखा था। उस समय चित्त क्षुब्ध था। इस कारण यदि कोई बात अनुचित लिख गई हो तो खयाल न कीजिएगा।

आम भेजनेकी कोई ऐसी ज़रूरत नहीं। लेकिन मेरा मना कर देना यदि आपको खटके तो आप पारसल Takia station O. X. R-P. (Cawnpore—Rai Bareli Branch) को भेज दीजिए।

रसीद मुझे दौलतपुर। आम क़रीब-क़रीब कच्चे हों। पारसल मज़बूतीसे बँधा हो।

मेरे घरसे जो कपड़ा चोरी गया है उसमें बहुत-सी चीज़ें काशीकी भी थीं। उनमेंसे कुछ लेनी पड़ेंगी। कुटुम्बियोंको उनके चले जानेका रंज है। आप कृपा करके अपने किसी जानकार मुलाज़िमको बाज़ार भेजकर नीचे लिखी चीज़ोंके दाम दरियाफ़्त करा लीजिए—

१—पीतांबर रेशमी, नारंगी रंग, सफेद ज़री किनारी बारीक अंगुल डेढ़ अंगुल चौड़ी, पल्लुवोंमें भी वैसा ही ज़रीका काम।

२—उपरना (दुपट्टा) नंबर (१) के सदृश।

३—पीतांबर मामूली, रंग पीला, रेशमी किनारी (रंग लाल या नीला) किनारी पतली।

४—उपरना (दुपट्टा) नंबर (३) के सदृश।

५—साड़ी बनारसी, रंग कंजई या और कोई खुशनुमा, ज़री किनारी, हल्की।

६—एक दुपट्टा काशी सिल्कका मामूली।

७—आसाम या ऐंडी सिल्क, एक कोटके लिए।

ये चीज़ें मेरे सदृश मामूली गृहस्थोंके योग्य जो हों उन्हींके दाम जानना चाहता हूँ। ज़ियादह क़ीमती चीज़ोंके नहीं।

शुभैषी

म० प्र० द्विवेदी

[१०६]

दौलतपुर, रायबरेली
९—८—२९

बहुविध आशीष,

७ अगस्तका पोस्टकार्ड मिला। आपके कुटुम्बपर वज्रपात होनेकी

सूचना मुझे काशीसे बाबू मैथिलीशरणने समयपर दी थी। मैंने उसी वक्त अपनी समवेदना-सूचक पत्री उन्हें भेजी; यथा बुद्धि सान्त्वना भी दी। शायद उन्होंने इसकी खबर आपको दी हो।

मैं भुक्तभोगी हूँ। अपने अनुभवसे जानता हूँ कि आपपर क्या बीती होगी और अब भी आपके मनकी क्या दशा होगी। यह रोग समझाने-बुझानेसे नहीं जाता। इसका कुछ इलाज यदि किसीके हाथमें है तो समयकी गतिके हाथमें है। संसार छोड़नेसे छूटता नहीं। सैकड़ों प्रकारके मायाजाल या बन्धनोंसे मनुष्य जकड़ा हुआ है। विरक्ति काम बिरलों हीके आती है। जो दशा हो उसीमें समाधान माननेके सिवा और कोई उपाय नहीं। मुझपर जो बीत रही है मैं ही जानता हूँ। पर उसके विलेखन और तदर्थ रोदनसे क्या लाभ?

एक बात आपकी मुझे खटकी। "कभी-कभी अवश्य स्मरण कीजिए"। यह ठेना क्यों? सत्तरके घर-घाट में आपका स्मरण करूँ और कलके बच्चे आप मुझ जरठ, अपाहिज, अशक्त और मरणोन्मुखका स्मरण न किया करें! यह कहाँका न्याय है? बूढ़ोंका सहारा या अन्धोंकी लकड़ी तो बच्चे ही होते हैं।

काशीमें कई पुस्तक-प्रकाशक हैं। मेरे फुटकर लेखोंके कई संग्रह मेरे पास हैं। विषय भिन्न-भिन्न हैं। मुनासिब उजरत देकर कोई छापे और प्रकाशित करे तो बताइएगा। १५, २० पुस्तकें निकल गईं। कुछ ही बाक़ी हैं।

शुभाकांक्षी

म० प्र० द्विवेदी

[११०]

दौलतपुर, रायबरेली
२७—८—२९

शुभाशिषः सन्तु

चिट्ठी २३ अगस्तकी मिली। अच्छा तो आप भी पुस्तक-प्रकाशक बन गये। आशा है काम अच्छा चलता होगा। मेरे लेख-संग्रहकी कोई १६ पुस्तकें तो छप गईं। कोई ८ छप रही हैं। ६ बाक़ी हैं। उनके नाम आदि अलग काग़ज़पर इसी लिफ़ाफ़ेमें मिलेंगे।

वाद-विवादवाले लेख वाग्विलास नामक पुस्तकमें गये। वह दरभङ्गा (लहेरियासरायवालों) ने ले ली है। बहुत-सी समालोचनाएँ नं० ६ पुस्तकमें हैं। आर्य्य-समाजका कोप वग़ैरह लेख और छोटे-छोटे नोट विचार-विमर्शमें हैं। उसके आठ खण्ड या अध्याय हैं।

कुछ प्रकाशकोंने मुझे धोखा दिया है। साहित्यालाप नामक पुस्तक खड्गविलास प्रेसने छापा है। छपे ५ महीने हो गये। ५००) से ऊपर उनसे पाना है। पर चिट्ठीका जवाब तक नहीं देते। आपकी जान-पहचानका वहाँ कोई हो तो उसकी मारफ़त उलाहना दिलाया जाय।

मेरी पुस्तकें यों ही सरपटकी हैं। विशेष बिक्री होनेकी संभावना नहीं। छापनेसे कहीं आपको घाटा न हो।

जिन पुस्तकोंके नाम मैं भेज रहा हूँ उनमेंसे कुछ मतवालावालोंने माँगा है — साहित्य-सीकर आदि। कुछके विषयमें प्रयागके बाबू रामनारायणसे लिखा-पढ़ी हो रही है।

आपकी प्रकाशित पुस्तकें बड़े महत्त्वकी हैं। जो मुझे भेजीं उनके लिए मैं कृतज्ञ हुआ। भैय्या, मैं अब १०, १५ मिनटसे अधिक नहीं

पढ़ सकता। सिर-दर्द हो जाता है। आगे कोई पुस्तक भेजना हो तो मुझसे पूछकर भेजिएगा।

ईश्वर आपको चिरञ्जीव करे और सुखी रक्खे।

शुभचिन्तक
म० प्र० द्विवेदी

१. विचार-विमर्श—साहित्य-समालोचना, विवेचना, पुस्तक-परिचय आदि ८ अध्यायोंमें, छोटे-छोटे मेरे १८१ नोट, १६ पेजी पुस्तककी पृष्ठ-संख्या कोई ३००।
२. विशिष्ट वार्ता—पुरातत्त्व-विषयक लेख, पृ० १५०।
३. साहित्य-सीकर—साहित्य-विषयक लेख, पृ० २००।
४. निबन्ध-संग्रह—फुटकर लेख पृ० १८०।
५. संकलन—फुटकर लेख पृ० १८०।
६. समालोचना-समुच्चय—आलोचनाएँ पृ० ३००।

[१११]

दौलतपुर, रायबरेली
६—१०—२९

आशीष,

मैं कानपुरमें सिर्फ़ ३ हफ़्ते रहने पाया। यहाँ मेरे दोनों कुटुम्बी सख़्त बीमार हो गये। इससे बीच हीमें लौट आना पड़ा।

आपका २० सितम्बरका पोस्टकार्ड मेरी ग़ैरहाज़िरीमें कानपुर पहुँचा। इधर-उधर घूमता रहा। कल शामको मुझे यहाँ मिला। अब तक मैं बड़ी चिन्तामें था। सन्देह हुआ कि कहीं आप बीमार तो नहीं जो पुस्तकोंकी पहुँच तक न लिख सके। इसीसे तीन चार रोज़ हुए मैंने बाबू श्यामसुन्दर

दासको लिखा कि किसीको आपके पास भेजकर आपका हाल दरियाफ़्त करें और मुझे लिखें।

कार्डमें आपने जो चुनाचुनीकी बातें लिखीं उनकी ज़रूरत न थी। "निधि" दी और "गौरवान्वित किया"—यह क्या?

आप मुझे रुपया न भेजें। मुझे अभी रुपयेकी ज़रूरत नहीं। कम-से-कम "विचार-विमर्श" को किसी अच्छे प्रेसमें छपनेको जल्द दे दें। पुस्तकमें १६ पेजी शायद ४०० पृष्ठोंसे कम न होंगे। देखिए क्या खर्च आपको पड़ता है। कितनी क़ीमत आप रखते हैं। बिकनेकी कितनी उम्मेद है। तब सुभीता अपना देखकर रुपया जनवरी-फरवरीमें भेजिएगा। अभी तक पुस्तक छापनेका आपने वादा किया है।

एक बात और। प्रयागमें रामनारायणलाल अच्छे प्रकाशक हैं। उनकी स्कूली किताबें भी कई जारी हैं। उनका तक़ाज़ा है कि मैं अपने लेखोंके संग्रहकी कुछ ऐसी पुस्तकें उन्हें दूँ जो Inter, B. A. और M. A. में कोर्स हो जायँ। उधर प्रयाग विश्वविद्यालयके हिन्दीके प्रोफेसर पं० देवीप्रसाद शुक्ल भी यही काम मुझसे कराना चाहते हैं। मैंने इन दोनोंको अभी दुटप्पी जवाब दे दिया है—आज्ञापालनकी चेष्टा करूँगा। विचार-विमर्शमें मेरे सब तरहके छोटे-मोटे लेख हैं। उनका समय भी व्यापक है—१ से २० वर्ष पहले तकका। संभव है, कोशिश करनेसे यह पुस्तक कोर्स-क़रार दे दी जाय। काशी और आगरेवाले भी बहुत करके इसे ले लेंगे। अतएव इसे जल्दी छपवा दीजिए। छप जानेपर मैं इन लोगोंको लिख दूँगा कि एक वैसी पुस्तक तैयार हो गई। इसकी पहुँच शीघ्र लिखिएगा।

शुभाकांक्षी
म० प्र० द्विवेदी

[११२]

दौलतपुर, रायबरेली
२१-१-३०

शुभाशिषः सन्तु

बहुत दिनोंके बाद आज आपका १८ जनवरीका पोस्टकार्ड मिला। खड्गविलास प्रेसवालोंने बहुत तंग किया। तब मैंने जायसवालजीको लिखा। उन्होंने रुपया भिजवा दिया।

सभाकी पत्रिकासे यह तो मुझे मालूम हो गया था कि आपने कला-परिषद्को सभाके भवनमें मिला दिया है; पर यह आज आप हीसे मालूम हुआ कि उसका सारा काम भी आप हीको करना पड़ता है। कीजिए। आप ही इसके योग्य भी हैं।

आप अपने वादेको भूल-सा गये हैं। आपने मुझे लिखा था कि मेरी पुस्तकें जनवरीके अन्त तक छप जायँगी। आपने अपने किसी विज्ञापनमें भी उनके शीघ्र निकलनेकी घोषणा की थी। खैर लाचारी है। आप और काममें लग गये। क्या किया जाता।

कृपा करके लिखिये, कुछ काम हुआ या नहीं। हुआ तो कितना हुआ और किस प्रेसमें हुआ। यदि कुछ फार्म छप गये हों तो उनकी एक-एक कापी मुझे भेज दीजिए।

अब मेरी पुस्तकोंके प्रकाशनका क्या प्रबन्ध आपने किया है और कबतक निकल जायँगी, यह भी लिखनेकी कृपा कीजिए।

आपने अपने एक पत्रमें दिवाली तक मुझे रुपया भेजनेको लिखा था। पर मैंने मना कर दिया था। मैं आपको लिखनेवाला ही था। इतनेमें आपका कार्ड आ गया। नये सालका आरम्भ है। कुछ ग़ैरमामूली ख़र्च आ रहे हैं। मेरे भानजेकी बहू अपने मायके प्रयाग गई हुई है। उसको भी कुछ रुपया भेजना है। अतएव विशेष कष्ट न हो तो जो कुछ आप पुस्तकोंके

हिसाबमें मुझे देना चाहते हों, उसका अर्द्धांश मुझे अभी भेज दीजिए। अवशिष्ट अर्द्धांश पुस्तकें छप जाने या मुझे उसकी ज़रूरत होनेपर भेजिएगा।

मैं अभी कहीं बाहर जानेका विचार नहीं रखता। कहीं दूरका सफ़र करने योग्य मैं अब हूँ भी नहीं।

कुम्भ-यात्रामें स्वास्थ्य-रक्षाका खूब ख्याल रखिएगा।

शुभाकांक्षी
म० प्र० द्विवेदी

[११३]

दौलतपुर, रायबरेली
२९-११-३३

शुभाशिषः सन्तु,

बहुत दिनोंसे आपके हाल नहीं मिले। आशा है आप अच्छी तरह हैं। कुछ समयसे मेरा उन्नीद्र रोग बढ़ गया है। बहुमूत्र (Diabetes) के भी लक्षण दिखायी दे रहे हैं। देखूँ कबतक शरीर चलता है।

पेन्शनको छोड़कर मेरी आमदनीके और सब ज़रिये अब प्रायः बन्द-से हैं। सहूलियतके लिए कुछ काश्तकारी भी यहाँ कर ली है। उसके लगानका तक़ाज़ा है। सख़्ती हो रही है। मेरी पुस्तकोंके हिसाबमें अगर आप सुभीतेके साथ कुछ भेज सकें तो भेज दीजिए। मगर मेरे कारण कष्ट न उठावें। प्रयागके एक प्रकाशकसे रुपया मिलना है। पर पत्रका उत्तर तक वे नहीं देते। औदार्य्य!

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[११४]

कमर्शल प्रेस
कानपुर
२२-१२-३४

आशीष,

आज मुझे जनरल मैनेजर न्यूज़ पेपर्स लिमिटेडसे आपके हिसाबमें १००) मिल गये। आपकी इस कृपाके लिए धन्यवाद।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[११५]

दौलतपुर, रायबरेली
१०--३--३५

शुभाशिषः सन्तु,

५ वर्षसे अधिक हुआ, मैंने आपको लिखा था कि बनारसमें कोई प्रकाशक मेरी दो-एक पुस्तकें ले सके तो बताइए। इसपर आपने खुद ही मेरी पुस्तकें ले लीं और अपने ५-१०-२६ के पत्रमें लिखा :—

"भारती भण्डारकी महत्ता इन पुस्तकोंसे बहुत बढ़ गई। अतः यह अपनेको अत्यन्त गौरवास्पद समझता है। अपने पूज्य आचार्यसे इस जनको आशीष रूपमें जो दिव्य निधियाँ मिली हैं उनकी भेंट यह दीवाली तक सेवामें उपस्थित करेगा।"

फिर ११ मार्च १६३० के पत्रमें आपने लिखा—

"आपके दोनों ग्रन्थोंके लिए मेरा विचार ५५१) श्री-चरणोंमें भेंट करनेका है। × × × आगामी १५ जूनके भीतर-भीतर यह भेंट सेवामें अवश्य पहुँच जायगी।"

अपनी पुस्तकें लेनेके लिए न तो मैंने आपसे इसरार किया और न कुछ माँगा। दो-तीन महीने पहले तक मैंने शायद आपको कभी याद भी नहीं दिलाई कि मुझे आपसे कुछ पाना है। आपने खुशीसे पुस्तकें लीं और खुद ही उजरतका निश्चय किया। आपके भण्डारकी पुस्तकें यदि लीडर प्रेसमें न चली जातीं तो बहुत करके हज़ार कष्ट सहनेपर भी मैं आपसे तकाज़ा न करता।

मेरे याद दिलानेपर लीडर प्रेसवालोंने इधर हालमें, एक विज्ञापन, मेरी पुस्तकोंका दो-तीन बार भारतमें निकाला। बस। फिर चुप। वही व्यास, प्रसाद, पाठक आदिकी अनमोल पुस्तकोंका विज्ञापन बराबर प्रकाशित हो रहा है। खैर, हर्ज नहीं। हर्ज जिस बातसे है वह यह है—

मुझे मालूम नहीं, उजरतके बारेमें लीडर प्रेसके साथ आपने क्या शर्तें की हैं। और इसे जाननेका मुझे हक़ भी नहीं। मेरी प्रार्थना सिर्फ़ यही है कि मुझे आपने जो कुछ देना निश्चित किया था उसे आप उन लोगोंसे दिलवा दीजिए। वह मुझे ४ वर्ष पहले ही मिल जाना चाहिए था। उसमेंसे १००) दो महीने हुए मिल चुका है। ४५१) बक़ाया है।

मैं आज कल कुछ तक़लीफ़में हूँ। मैं कुछ अच्छा होकर घर आया तो भानजेकी बारी आई। वह ढाई महीनेसे कानपुरमें पड़ा है। कैप्टन पाईका इलाज है। उसका खून ख़राब हो रहा है। इंजेक्शन लग रहे हैं। बड़ा खर्च है। वह किसी तरह संभलता नहीं देख पड़ता।

संग्रह-पुस्तकोंसे जो कुछ मिलना था मिल चुका। आमदनीका और कोई द्वार नहीं। आज मार्चकी १० तारीख है। अब तक इण्डियन प्रेससे पेंशनके भी टके, फ़रवरीके नहीं मिले। इन्हीं कारणोंसे तंग आकर आपको लिखना पड़ा।

मैं आपको ज़रा भी तंग नहीं करना चाहता। आपके मत्थे जाय तो मुझे कुछ न चाहिए। लीडर प्रेससे मिलना हो तो फ़ौरन उनको लिख कर दिलाइए—मेरी पुस्तकें बिकें चाहे न बिकें। ऐसी कोई शर्त भण्डारने मुझसे नहीं की जिनसे पुस्तकें बिकने तक मैं अपनी उजरतसे महरूम रक्खा जा सकूँ।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी



पं० लल्लीप्रसाद पाण्डेय

पं० लल्लीप्रसाद पाण्डेयका जन्म-स्थान ग्राम, सनोदा, ज़िला-सागर (मध्यप्रदेश) है। इनका नाम अयोध्याप्रसाद तिवारी था। पण्डित रामलाल पाण्डेयके यहाँ गोद आनेके बाद इनका नाम लल्लीप्रसाद पाण्डेय पड़ा। यह साधारण किसान और ग्रामीण पुरोहित थे। लल्लीप्रसादजीका जन्म ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी सं० १९४३ को हुआ। दो सालके बाद ही उनकी बुआ उन्हें लेकर सागर ले आई। सागरमें ही आपने संस्कृतका अध्ययन किया।

सन् १९०७ ई० में आप नागपुर चले गये। वहाँ हिन्दी केसरी में ११ महीना काम किया। पुनः सागर वापस चले गये। १९११ में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ आ गये। यहाँ प्रूफ़-संशोधकका काम किया। १९१४ में कुछ समयके लिए कलकत्ते चले गये। ८ महीने बाद पुनः नवलकिशोर प्रेस आ गये। १९१५ ई० में सप्रेजीके कहने से गीतारहस्यके प्रकाशनके लिए पूना चले गये।

सन् १९१७ ई० में बालसखा और साहित्य विभागमें काम करनेके लिए इंडियन प्रेस प्रयाग आ गये। यहीं पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीके घने सम्पर्क में आये। बराबर द्विवेदीजीके सहायक और विश्वासपात्र रहे। द्विवेदीजी के १४१ पत्र आपके पास मिले। उन सबको देखनेके बाद जो सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण पत्र समझमें आये, वे २१ पत्र यहाँ दिये जा रहे हैं।

[११६]

जूही, कानपुर
३१-८-१७

प्रणाम,

ये कार्ड लीजिए। मैं नहीं चाहता कि ऐरे-गैरे जो चाहें 'सरस्वती'की कविता नकल करके ग्रन्थकार बन बैठें। ऐसी महँगीके समयमें और जब आपकी आलमारी "कापियों"से भरी है तब भीलोंके देशके एक गुमनाम ज़मीन्दारका किया हुआ कविता-संग्रह छापनेके लिए आप कैसे तैयार हो गये! उसे देखा तक नहीं और छापनेकी स्वीकृति! क्या मैं या आप 'सरस्वती'में प्रकाशित कविताओंका संग्रह नहीं तैयार कर सकते? जब प्रेस कहेगा मैं एक संग्रह कर दूँगा। ज़मीन्दारजीसे कहिए कि 'सरस्वती' वाली कविताएँ अपने संग्रहसे निकालकर बाक़ी आपको भेज दें। अगर प्रेस ख़ुद ही चाहता हो कि वे कविताएँ इस मालवी-संग्रहमें रखी जायँ तो किसीसे पूछनेकी क्या ज़रूरत। रख दीजिए। बहुत हो तो लिख दीजिएगा कि सर० से उद्धृत।

मेरे पास इस तरहकी चिट्ठियाँ आया ही करती हैं। मैं बहुत कम जवाब देता हूँ।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[११७]

जूही-कलाँ, कानपुर
११-१०-१९

नमोनमः,

कृपा-पत्र मिला। अपने अनुवादित *प्रहसनके विषयमें आप बाबू

* प्रहसन 'रायबहादुर'। प्रकाशक- गंगापुस्तकमाला, लखनऊ।

महावीरप्रसाद पोद्दार* हिन्दी पुस्तक एजेंसी, हैरिसन रोड, कलकत्ताको लिखिए। बहुत करके वे ले लेंगे। उनको लिखनेमें मुझे सङ्कोच होता है। नहीं, मैं ही लिख देता। मुझसे एक आध पुस्तक वे माँगते थे। सो नहीं दे सका। थी ही नहीं। संकोचका यही कारण है।

राम, कृष्ण, युधिष्ठिर, व्यास, वाल्मीकि आदि हम सबके आदरके पात्र हैं। उनके लिए आदरार्थक बहुवचन ही लिखना अच्छा है। औरोंके लिए एकवचन। दुष्ट, शिष्टके सम्बन्धमें भी यही।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[११८]

पाण्डेजी,

१. शुक्लजीके† पास जो लेख हों, उन्हें मंगाकर देखिए कुछ छपने लायक हैं? जो हों उनकी भाषा ठीक कर दीजिए।
२. नये लेख और कविताएँ प्राप्त करनेकी चेष्टा कीजिए।
३. जनवरीकी 'सर०'की कापी तैयार करके मुझे देखनेको भेजिए। मैं देखकर लौटा दूँगा, छापनेके लिए। हर महीने यही किया कीजिए। आखिरी प्रूफ़ मैं देखा करूँगा।
४. गुरुजीसे पूछ-पूछकर काम कीजिए, उनकी निगरानीमें।
५. 'सरस्वती'के बदलेमें जो पत्र आदि आते हैं आप ही वहाँ लिया कीजिए। समालोचनाके लिए पुस्तकें और सरकारी रिपोर्टें भी।

---

* श्री महावीरप्रसादजी पोद्दार अब हिन्दी पुस्तक एजेंसीसे अलग हैं। वह गोरखपुरमें रहते हैं और गान्धीजीके रचनात्मक कामोंकी देख-भाल करते हैं।

† देवीप्रसाद शुक्ल बी० ए० सुपरिण्टेण्डेण्ट हिन्दू बोर्डिंग हाउस, प्रयाग।

६. रिपोर्टें या अंगरेज़ीकी पुस्तकें जो आप न पढ़ सकें मुझे भेज दिया कीजिए। अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तकें भी, समालोचनाके लिए।

७. बाक़ी पुस्तकों और रिपोर्टोंकी समालोचना या उनपर नोट लिखकर, नोट और पुस्तकें चौथे-पाँचवें या हर हफ़्ते मुझे देखनेके लिए भेज दिया कीजिए।

८. विविध विषयके नोट जितने आप लिख सकें लिख भेजा कीजिऐ। तीसरे चौथे।

९. सम्पादक 'सर०'की डाक आप खोला कीजिए। काम लायक लेख रखकर बाक़ी रद्दी कर दिया कीजिए। पसन्द किये गये लेखोंकी भाषाका संशोधन करके मुझे भेज दिया कीजिए।

१०. मामूली चिट्ठियोंका जवाब भी आप ही दे दिया कीजिए।

११. जनवरीके लिए मेरे पास न कोई चित्र न लेख। मोतीलाल नेहरूका चित्र वहीं प्राप्त करके ब्लाक बनवाइए, जनवरीके लिए सूचना मिलनेपर मैं नोट लिख दूँगा। नोटकी सामग्री आपको मिल सके तो आप ही नोट लिख दीजिए।

१२. दो महीनेकी कापी मैं खुद ही पोद्दी *बाबूको दे आया था। कुछ चित्र भी। कुछ लेख उसमें छपे हैं। जो चित्र या लेख बचे हों, शीघ्र मुझे डाकसे लौटा दीजिए।

१३. आपके और गुरुजीके ही भरोसे मैं चार-छः महीने अपना नाम 'सर०' पर और बना रहने दूँगा। पर दो तीन घंटेसे अधिक काम न कर सकूँगा। मेरी नेकनामी-बदनामी आप ही लोगोंके हाथ है।

१४. जनवरीसे शुक्लजीका नाम 'सर०' पर न रहेगा।

२३—१२—१९　　म० प्र० द्वि०

* चिन्तामणि बाबूके ज्येष्ठ पुत्र

[११६]

दौलतपुर
७-१-२०

नमोनमः

५ का पत्र मिला। पैकेटके भीतरकी सब चीज़ें भी मिल गईं।

घोषणाका* अनुवाद मैंने ही कर डाला। अब वही छपेगा। आपका भेजा हुआ रक्खा रहेगा।

नोट आपके भेजे पढ़कर निश्चय करूँगा कि छपेंगे या नहीं।

पं० मोतीलालका चरित लेखकको मैंने ही लौटा दिया।

जनवरीमें रंगीन चित्र कोई और छापिए। सम्राट्का सादा छापिए। सम्राज्ञीका कोई नहीं। ए० पी० सिंह और मांटेगूका सबसे अच्छा जो आपको मिल सके।

मौलिक और अनुवादित ग्रन्थवाले लेखकी बात भूल जाइए।

जनवरीके ७ दिन बीत गये। जो कुछ मेरे पास है उसकी कापी कल परसों भेजूँगा। शीघ्र ही कम्पोज कराकर प्रूफ़ खूब पढ़िए। अन्तिम प्रूफ़ निर्दोष मुझे भेजिएगा।

आप और गुरुजी मेरी ऐसी सहायता करें कि मेरा निस्तार हो जाय।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

* भारतके सम्बन्धमें ब्रिटिश सम्राट्की घोषणा।

[१२०]

दौलतपुर, रायबरेली
८–१–२०

नमस्कार,

१९१९की 'सरस्वती'के दूसरे खण्ड–जुलाईसे दिसम्बर तक—की जिल्द बँधाकर हमेशाकी तरह भेजनेकी कृपा कीजिए। बदलेकी लिस्ट तथा फ्री लिस्ट भी एक-एक कापी भेजिए, देखूँ, कुछ परिवर्तनकी तो दरकार नहीं।

जनवरीकी कापी आज भेजूँगा।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[१२१]

दौलतपुर
१२–१–२०

नमस्कार,

१० जनवरीका पत्र मिला। निवेदन यह है—

१. प्रूफ़के साथ कापी ज़रूर भेजिएगा। खूब लगाकर, बराबर करके, सीकर।

२. रंगीन चित्रके प्रूफ़के साथ अपना लिखा हुआ परिचय भी भेजिएगा।

३. बदलेके पत्रोंकी बाबत महीने-पन्द्रह रोज़ बाद लिखूँगा। अभी जाने दीजिए। लिस्ट रखी है। १० रोज़ बाद आप लिखिएगा, आपके पास कौन-कौन आते हैं।

४—वङ्गविजेताकी समालोचना न छपेगी। बात मनमें रखिए।

५—दिसम्बरके लेखोंका पुरस्कार आप, शुक्लजी और गुरुजीसे पूछ कर भेजिए। आप न जा सकें तो पं० देवीदत्त पूछ आवें।

प्रबन्ध* चौकस न हो तो विशेष हर्ज नहीं। कोई गड़बड़ न होने पावे। उसे अपना समझे रहिएगा—जबतक मालिक हाजिर नहीं या बीमार हैं।

आज काशी संगीत-सम्मेलनके २ चित्र भेजे हैं। पढ़कर पहुँच लिखिएगा।

कुछ अच्छे नोट लिखिए, लेख भी। पं० देवीदत्तसे भी लिखाइए। 'सर०'के कामसे जितना समय बचे प्रेसके अन्य काममें लगाइए। समय टेढ़ा है। संभालिए।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[१२२]

दौलतपुर
१७-१-२०

नमोनमः

सेवासदनके† संशोधनमें मुझे बहुत श्रम करना पड़ा। कृपा करके धीरजके साथ समय-समय पर भाषाकी शुद्धता और मुहावरेका खयाल करके, संशोधन किया कीजिए जिससे मेरी मिहनत कम हो जाया करे।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

* प्रेसमें हड़तालके कारण

† यह सेवासदन प्रेमचन्दजीका उपन्यास नहीं है।

[१२३]

दौलतपुर
५—२—२०

नमस्कार,

२ फरवरीका कार्ड मिला। पेरिसपर मैंने लेख लिख लिया।

मस्तिष्कके तर्कके लेखकको भी लिख दिया और लेखके लिए।

उनकी आज्ञा हो तो हवाई द्वीपकी सैर नामक लेखके नीचे बाबू* ····का नाम दे दीजिए। उनसे पूछ लीजिए—पता—ज्ञानमण्डल, काशी।

चित्रोंके लिए टिहरीको लिखा, अच्छा किया। कलकत्तेके बंगाली चित्रकारोंको भी लिखाइए। रामेश्वरप्रसादको मैं लिख चुका हूँ।

गोस्वामीजीका रङ्गीन चित्र व्रजाङ्गना फरवरीमें छापिए। उस पर नोट भेजिए। चित्र उन्हें लौटा दीजिए। उन्होंने दो सादे चित्र भी भेजे हैं न? अच्छे हैं? मैंने उनसे कहा है कि उनपर कुछ लिख भेजें। उनके पास और भी चित्र हैं। वे बड़े हैं। मैंने नाम पूछे हैं। लिख दिया है भेजनेका खर्च प्रेस देगा या एक आदमी जाकर उन्हें ले आवेगा।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[१२४]

दौलतपुर
२४—१—२०

नमोनमः,

२२ का पत्र और पाकेटके भीतरकी चीज़ें मिलीं।

प्रूफ़ पढ़कर लौटाऊँगा। उन्हींपर लिख दूँगा, क्या छपे क्या रख छोड़ा जाय।

---

* नाम जान-बूझकर छोड़ दिया है। मूल-पत्रमें सुरक्षित है।

शुक्लजीसे आप या देवीदत्तजी पेरिस-विषयक लेख प्राप्त करके मुझे भेजिए। लेख ज़रूर उन्हें मिला होगा, नहीं ब्लाक क्यों बनवाते।

मुकुटधरको ठीक जवाब दिया। लेख और चित्र आने दीजिए।

शुक्लजीवाली कविताएँ ३ रखीं। बाक़ी रद्दीमें डाल दीं।

कौंसिल शब्दको सदा पुलिङ्ग रखा कीजिए।

अनुस्वार अर्द्धचन्द्रका झगड़ा आपपर छोड़ता हूँ।

समालोचनाएँ और पुस्तकें मिलीं। क्या इतनी ही पुस्तकें शुक्लजीसे मिलीं। मिली हों तो औरोंको भी समालोचना समेत भेजिए। फरवरीकी कापीके लिए विभूतिकी कविताका फैसला मैं कर दूँगा।

अच्छा किया शारदाका विज्ञापन इस प्रकार टाला। ऐसा ही किया कीजिए।

किसी अखबार वग़ैरहकी आलोचना मुझसे पूछकर लिखा कीजिए। प्रभाकी केवल एक आलोचना वेंकटेश्वरमें छपी मुझे पैकेटमें मिली।

निवेदक

म० प्र० द्विवेदी

[१२५]

जूही, कानपुर
७—३—२०

नमस्कार,

राजनाँदगाँवके बाबू पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शीने सब शर्तें मंजूर कर लीं। वे वहाँ मास्टर हैं। ८०) पाते हैं। इस्तेफ़ा उन्होंने भेज दिया। चार-पाँच अप्रैल तक खाली हो जायँगे और चले आवेंगे। ६ महीने परीक्षाके तौरपर रहेंगे—६०) पर। बाद मुस्तकिल होनेपर १००) पावेंगे। पहले दो महीने आपके पास प्रेसमें काम करेंगे फिर इतने ही दिन मेरे पास कानपुरमें। काम सीख जानेपर वे प्रेससे ही सरस्वतीका सब

काम किया करेंगे। आनेपर उन्हें अच्छी तरह रखिएगा। उनकी सहायता कीजिएगा। बड़े बाबू*को यह कार्ड सुना दीजिएगा।

भवदीय

म० प्र० द्विवेदी

[१२६]

प्रणाम,

४ता० का पत्र मिला। पैकेट भी मिला। पैकेटमें पूनेके प्राच्य विद्या-सम्मेलनका चित्र नहीं मिला। वहीं रह गया होगा। ढूँढ़िए। मिला या नहीं, लिखिए। मिले चाहे न मिले उसकी क़ीमत ३॥)

पं० हरिरामचन्द्र दिवेकर एम० ए०

महिलाश्रम, हिंगणे [पूना]

को मनी० आ० से भेजिए। भेजनेकी सूचना मुझे दीजिए।

टासीटोरीवाला नोट निकाल दीजिए। उनपर अगली संख्यामें १ लेख निकालूँगा। पत्रका चित्र मैंने रख लिया है। फोटो भी भेजूँगा। यू० पी० गैजट लौटा दूँगा। पञ्चायत-बिल निकालकर। वह आपके कामका नहीं, मेरे कामका है। मुझे और कापी मिल गई तो उसे भी पीछे लौटा दूँगा।

सब मैटर १४६ कालम है। २२ कालम हवाई द्वीपकी सैर निकालिए। ५ कालम बंटीवाला लेख निकालिए। ६१ कालममें जहाँ "काउंसिल ड्राफ्ट" हेडिंग है, उस हेडिंगके ऊपर ही तक इस संख्यामें छापिए। शायद इससे भी कम। चित्र-परिचय और पोदी बाबू पर भी नोट जायगा। इस तरह कोई आधा फ़ार्म बढ़ेगा याने ७ के ७॥ हो जायँगे। सो इतना ही छापिए। प्रूफ़ कल-परसों तक लौटाऊँगा। साथके नोटमें संशोधन कर दूँगा।

---

* स्व० श्री चिन्तामणि घोष।

निजामके उर्दू-फ़ारसी-ग्रन्थ विषयक नोट मिल गया।

पोदी बाबूपर नोट लिखकर आप जल्द भेजिए। मेरी बुरी दशा है। परसों रातको मुझे फिर मूर्च्छा आयी। ३ घंटे बेहोश रहा। मानसिक काम करनेसे फिर यह रोग लौट पड़ा। बुरा दौरा हुआ। कल तो चल-फिर तक न सकता था। आज कुछ अच्छा हूँ। दिमाग़ी काम नहीं कर सकता। कृपा कीजिए। अच्छा नोट भेजिए। मेरी कुछ अधिक मदद कीजिए—आप और देवीदत्त दोनों। ३ लेख संशोधन करके आपने नहीं लौटाये। १ पुस्तककी समालोचना भी नहीं भेजी। पं० देवीदत्तको यह पत्र दिखा दीजिएगा।

हाय-हाय, बड़े बाबूकी लड़की भी चल बसी। भगवान् बड़ा निष्ठुर है। क्या करनेवाला है।

म० प्र० द्विवेदी

६—३—२०

[१२७]

जूही, कानपुर

१२—३—२०

प्रणाम,

१० का कार्ड मिला। मैं तो ५ अप्रैल तक भानजीके गौनेके लिए गाँव जाऊँगा। वहाँ दो-ढाई महीने रहना पड़ेगा। वहाँ *बक्षीजीको कैसे बुलाऊँ। गाँवकी तकलीफ़ें देखकर कहीं भाग न जायँ। आपने यहाँ कुछ दिन रखिए। भले आदमी हों और रहनेके लक्षण देख पड़ें तो गाँवपर ही बुला लूँगा। मैं तो यही चाहता हूँ कि कोई मेरे पास ही रहे। नहीं, कानपुर लौटनेपर बुलाऊँगा। बड़े बाबूसे कह दीजिए।

भवदीय

म० प्र० द्विवेदी

* श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

[१२८]

प्राइवेट—गोपनीय

दौलतपुर, रायबरेली
५ जून १९२०

प्रणाम,

आचार्य व्रजराजके* विषयमें आपका पत्र मिला। बड़े बाबूकी आज्ञा शिरसाधार्य है। एक पत्र आचार्य महोदयके नाम भेजता हूँ। उसे बड़े बाबूको सुनाकर उन्हें दे दीजिएगा। फिर इस पत्रको भी बड़े बाबूको सुनाकर फाड़ डालिएगा। इसका मज़मून और किसीके कानमें न पड़े।

व्रजराज हिन्दी खासी लिख लेते हैं। अपने विचार भी वे अच्छी तरह प्रकट कर सकते हैं। पर उनके इस अकेले लेखसे उनकी योग्यताका ठीक-ठीक पता नहीं लग सकता। उनके और कोई लेख या ग्रन्थ कभी मैंने नहीं पढ़े। यह लेख तो उन्होंने शा (Shaw) वग़ैरहकी किताब—अँगरेज़ी ग्रन्थकारोंके चरितके बलपर ही लिखा है। औरोंके भाव हिन्दीमें लिख दिये हैं। भाषा इनकी है भाव औरोंके। फिर लेखमें यत्रतत्र अनावश्यक अँगरेज़ी नाम और अँगरेज़ी अवतरण दिये हैं। लोग अन्त तक शायद इनका लेख पढ़ेंगे भी नहीं।

व्रजराज संस्कृत नहीं जानते। इस दशामें इनसे शब्द-शुद्धिकी आशा विशेष नहीं की जा सकती। इन्होंने हिन्दी साहित्यके अच्छे-अच्छे ग्रन्थ पढ़ डाले हैं, यह भी इनके इस लेखसे पता नहीं चल सकता। परिश्रम करें और साहित्य-सागरमें डूबकर अच्छे-अच्छे रत्न निकालना चाहें तो इनसे प्रेसका कुछ काम अवश्य चल सकेगा। पर यह सब इन्हें

* अध्यापक कायस्थ पाठशाला, प्रयाग।

गवारा होगा या नहीं, मैं नहीं कह सकता। अँगरेज़ीके एम० ए० तो समझते हैं कि हिन्दी और संस्कृतमें उनके सीखनेको कुछ है ही नहीं। जबतक ये हिन्दीसे प्रेम न करेंगे और हिन्दीकी नई पुरानी पुस्तकें देखेंगे नहीं, तबतक अच्छी-बुरी पुस्तकका भेद ये कैसे समझ सकेंगे और यह कैसे जान सकेंगे कि किस पुस्तकके प्रकाशनसे प्रेसको ४ पैसे मिलेंगे। इन्हें पुस्तक-प्रकाशन सम्बन्धी दूर-दूर तककी खबर रखनी होगी।

जहाँ तक केवल हिन्दीसे सम्बन्ध है वहाँ तक बख्शीजी* इनसे अधिक सरसहृदय और हिन्दी-प्रेमी जान पड़ते हैं। वे कवि भी हैं, संस्कृतज्ञ भी हैं। हिन्दी भी मज़ेकी लिख लेते हैं। आगे और भी तरक्की करनेकी उम्मेद है। ब्रजराजको २००) पर और बख्शीजी को १००) पर रखनेसे कहीं ऐसा न हो जो बख्शीजी छोड़ जायँ। उनको जबलपुरके कर्मवीर और शारदा वाले बहुत प्रलोभन दे चुके हैं। और अब भी शायद दे रहे हों। खुद सप्रेजीने उन्हें इंडियन प्रेसमें आनेसे रोका था। सब बातोंपर बड़े बाबूको विचार कर लेना चाहिए। मैं बख्शीके कामसे सन्तुष्ट हूँ। इस सन्तोषका कुछ बोध आपको भी है क्योंकि आपकी मददसे ही जो कुछ उन्होंने किया है, किया है। मैं उन्हें तीन ही महीने बाद याने जुलाईसे ही मुस्तक़िल कराना चाहता हूँ, जिससे उन्हें १००) मिलने लगें। अगर वे असन्तोषके चिह्न प्रकट करें तो उन्हें पहले ही उस पाँच रुपयेकी तरक्की और दे देनी चाहिए, जिसमें जायँ नहीं। ऐसा और आदमी अब न मिलेगा।

भवदीय

म० प्र० द्विवेदी

* श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी। हिन्दीके प्रसिद्ध कहानी लेखक और समालोचक।

[१२९]

दौलतपुर
५-६-२०

प्रणाम,

१ जूनका पत्र मिला। अब मेरे पैरका रोग अच्छा है। चित्त शान्त है।

लेख और नोट सब आपके निर्देशानुसार मिल गये।

परमाणुकी शक्तिके विषयके तीनों चित्र लौटाता हूँ। ब्लाक बनवाइए। छपनेके लिए लेख आनेपर लेख देखकर चित्रोंका नामकरण कर दीजिएगा।

सूचीकी कापी भी लौटाता हूँ। किसी भी लेख या चित्रका नाम न रह जाने पावे।

एक लेख संशोधनके लिए पैकेटमें मिलेगा। उसे बख्शीजीको दे दीजिएगा।

बेंकटेश्वर मेरे पास यों हीं कभी-कभी आ जाता है। सब अङ्क नहीं आते। हलवाइयोंने मेरे नोटके उत्तरमें क्या लिखा है मैंने नहीं पढ़ा। पढ़नेकी इच्छा भी नहीं।

रविबाबूके चित्रकी छपी हुई कापी लौटाता हूँ। बेहतर है, इसी ब्लाकको छाप दीजिए। शान्तिनिकेतनके छात्रों और अध्यापकोंका चित्र ठीक न हो तो जाने दीजिए। या पटल बाबूसे कहिए, रवि बाबूको लिख दें। वे और चित्र भेज देंगे। चित्र छापना उनके आश्रमके फ़ायदेकी बात होगी।

पटल बाबूके नाम अँगरेज़ीमें चिठी भेजता हूँ। उन्हें दे दीजिएगा। बख्शीजीको किसी पुस्तकालयका मेम्बर करा दीजिए, जिसमें मार्डनरिव्यू '

इंडियनरिव्यू वगैरह आते हों। चन्दा प्रेस दे। यही मैंने अँगरेज़ीमें लिखा है।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[१३०]

दौलतपुर
५—६—२०

श्रीयुत पांडेजीको प्रणाम,

मैं जुलाईसे बख्शीजीको मुस्तकिल कराना चाहता हूँ। अभी तक उन्होंने आपकी मददसे काम किया है। अब मैं उनकी स्वतन्त्र कारगुज़ारी देखना चाहता हूँ। आप कृपा करके उन्हींसे अब 'सरस्वती'-सम्पादनका सारा काम कराइए। जो कुछ पूछें वह बतला अवश्य दीजिए। देखूँ तो ये अकेले काम कर सकेंगे या नहीं। मेरे शरीरकी बुरी दशा है। मैं अलग होना चाहता हूँ। अगर बड़े बाबू आज्ञा देंगे तो नाम अपना दिसम्बर तक 'सरस्वती' पर रहने दूँगा। पर काम अब मैं इन्हींसे कराना चाहता हूँ। कापी मैं देखूँगा, प्रूफ़ भी।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

पुनश्च—

बड़े बाबूको सुना दीजिएगा।

[१३१]

दौलतपुर, रायबरेली
१०—६—२०

प्रणाम,

७ जूनकी चिट्ठी कल मिली। ब्रजराजजीका हाल मालूम हो गया। ठीक है। इस दशामें बख्शीजीको बुरा माननेकी बात नहीं। बड़े बाबूने

सोच-समझकर काम किया है। बहुत अच्छा है। ब्रजराजजी काम संभाल लें तो फिर क्या कहना।

मेरी शक्ति अत्यन्त क्षीण है। नोट या चिट्ठी लिखनेसे भी सिरमें दर्द पैदा हो जाता है। अन्यथा बड़े बाबूकी कृपासे घर बैठे इतनी आमदनी न छोड़ता। अगर उनकी यही आज्ञा है तो ६ महीने मेरा नाम सरस्वतीपर और रहे। बख्शीजी जुलाईसे लिखने और संशोधन आदिका सब काम करें। कापी देखकर मैं पास करूँगा और प्रूफ देखूँगा। हो सका तो दो-एक नोट भी लिख दूँगा। इधर सितम्बर तक तो काम चला ले जाऊँगा। आगे जाड़ोंमें मेरी तकलीफें बढ़ जाती हैं। तभी डर है। जो कुछ हो, बड़े बाबूकी आज्ञाका पालन शरीरमें प्राण रहते अवश्य करूँगा। उन्हें यह पत्र चुपचाप सुनाकर फाड़ डालिएगा।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[१३२]

दौलतपुर, रायबरेली
२२–७–२०

प्रणाम,

२० जुलाईका पत्र मिला। आप या बड़े बाबू अन्तर्यामी हैं। कल बख्शीजीकी भेजी हुई दो रंगीन तसवीरें सुबह मिलीं। आज ही उन्हें लौटाया। उनके पैकेटके भीतर अपनी चिट्ठीमें मैंने खुद ही लिख दिया है कि जुलाईसे आपका भी नाम सरस्वतीके कवर पर रहे। पैकेट बन्द करनेके बाद आज ही ८ बजे आपका पत्र मिला। उनका नाम ज़रूर छपे। मैं यही चाहता

था। इससे लोग उनको जानेहींगे नहीं, उनकी ज़िम्मेदारी भी बढ़ेगी। सरस्वतीकी नेकनामी या बदनामीमें उन्हें भी अपनेको शरीक समझना पड़ेगा। बड़े बाबूसे मेरे विचार कह दीजिए।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[१३३]

दौलतपुर, रायबरेली
८-४-२८

श्रीयुत पाण्डेयजीको नमस्कार

५ अप्रैलका कृपा-कार्ड मिला। कृतज्ञ हुआ। पुस्तकोंको एकके बाद एक इस क्रमसे छापिए—

१—आलोचनाञ्जलि

२—पुरावृत्त

३—प्राचीन चिह्न

४—चरित-चर्य्या

प्रत्येक पुस्तककी भूमिकाका प्रूफ़ मुझे भेजिएगा। इससे मुझे मालूम हो जाया करेगा कि कौन पुस्तक कब खतम हुई। इन पुस्तकोंका छपना आप हीकी कृपा पर अवलम्बित है। इनके ख़तम होनेपर और भेजूँगा।

सम्मेलनके सम्बन्धमें मेरे पास कई चिट्ठियाँ आई हैं। जो आन्दोलन हुआ है उसीसे यथेष्ट सफलता होनेकी आशा है। मन्त्रिमण्डल अब शायद ही जम सके। कुछ न कुछ परिवर्तन इस दफ़े ज़रूर होगा।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[१३४]

दौलतपुर, रायबरेली
२७-१-२९

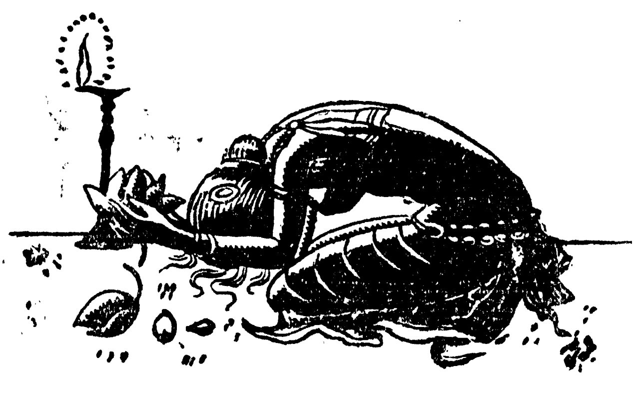
श्रीयुत पाण्डेयजीको सादर प्रणाम,

चरितचर्य्याकी कापी मिली। पत्र भी मिला। कृतज्ञ हुआ। आपहीकी बदौलत ये पुस्तकें इतना शीघ्र निकल गईं। आपको अनेक धन्यवाद

टी० बी० का काम बहुत ज़रूरी है। उसे कीजिए। जब उससे फुरसत मिले मुझे एक पोस्टकार्ड भेज दीजिए। अब सिर्फ़ एक ही दो पुस्तकें शेष हैं। और सब छप चुकीं। आपकी सूचना पानेपर ही मैं पटल बाबू को लिखूँगा।

पुनरपि मेरा कृतज्ञताज्ञापन स्वीकार कीजिए।

आपका
म० प्र० द्विवेदी



पं० केशवप्रसाद मिश्र

पं० केशवप्रसाद मिश्रका जन्म चैत्र कृष्ण ७ संवत् १९४२ को काशीमें हुआ। इनके पिताका नाम पं० भगवतीप्रसाद मिश्र था।

पं० केशवप्रसादजी वैसे इंटर पास थे। पर संस्कृत, अंग्रेज़ी और हिन्दीका इन्होंने बड़ा ठोस अध्ययन किया था। प्रारम्भमें ये काशी के कुछ स्कूलोंमें अध्यापक थे। सन् १९१४ से १९१६ तक सनातन-धर्म स्कूल इटावामें अध्यापन कार्य किया। इसी कालसे इनका सम्बन्ध साहित्य-जगत्से हुआ। ये बड़े अच्छे कवि थे। सन् १९१७ से १९२७ तक मिश्रजी ने हिन्दू स्कूल, कमच्छा (काशी) में अध्यापन कार्य किया। १९२८ से १९४१ तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें हिन्दीके अध्यापक रूपमें काम किया। १९४१ से १९५० तक हिन्दी विभागके अध्यक्ष थे। इसके बाद अध्यापन-कार्यसे अवकाश ले लिया।

फाल्गुन शुक्ल १३ सं० २००७ को आपकी मृत्यु हो गई।

पं० केशवप्रसाद मिश्र विद्याचरण-सम्पन्न ब्राह्मण थे। भाषा-विज्ञानके वह अधिकारी विद्वान् थे। बहुत ही अच्छे अध्यापक, सीधे, मर्मज्ञ और सरल चित्तके व्यक्ति थे। मिश्रजीका पं० महावीर-प्रसाद द्विवेदीसे बहुत घना सम्बन्ध था। मिश्रजीके नाम द्विवेदी जीके बहुत से पत्र हैं—जो श्री मुरारीलालजी केडिया (काशी) के पास सुरक्षित हैं। उन पत्रोंमें से महत्त्वपूर्ण पत्रोंको यहाँ दिया जा रहा है।

[१३५]

जूही, कानपुर
१—४—१५

नमोनमः,

पत्र मिला। काशीवाली चिट्ठी पढ़कर बहुत कौतुक हुआ। मेरे पास भी एक चिट्ठी आई है। टाइपमें लिखी हुई। अँगरेज़ीमें।

कविता ठीक बन गई। विशेष मनोहारिणी हो गई। एप्रिलकी 'सर०' कम्पोज हो चुकी, नहीं उसीमें दे देता। अब मईमें दूँगा। विलम्बके लिए क्षमा-प्रार्थना।

विषय मैं क्या बताऊँ, आप ही निश्चय कीजिए। जिस विषयपर लिखनेको जी चाहे लिखिए। संसारमें विषयोंकी कमी नहीं। मुहावरेका ख्याल रखिए। सरलताका भी। दीर्घको लघु न पढ़ना पड़े। बात ऐसी हो कि दिल पर असर करे।

आप धन्यवाद दे दें जो आपके लेखमें दो ही ग़लतियाँ रह गईं। मैंने अनेकोंकी सूचना प्रेसमें दे दी है। स्थायी प्रूफ संशोधक बीमार हैं। नये संशोधक बहुत ग़लतियाँ करते हैं।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[१३६]

दौलतपुर, रायबरेली
६—६—१७

प्रणाम,

मेघदूतके संशोधित पद्य मिले। वैसे ही छाप दूँगा।

इसी क्रमसे नंबरवार मूल श्लोक और उनके नीचे हिन्दी भावार्थ भेजनेका भी कष्ट उठाइए। इस विषयमें मैं आपसे प्रार्थना कर चुका हूँ। उर्सलोन्ध्र या शिलीन्ध्र कहीं छरीलेको तो नहीं कहते? दोनोंमें नाम-साम्य है। छरीला एक सुगन्धित चीज़ है। सिर मलनेके मसाले और उबटनमें काम आता है। दाक्षिणात्य उसे पहाड़ या पत्थरका फूल कहते हैं। छत्रकहीके सदृश वह पहाड़ी भूमिपर उगता या फूलता है।

भवदीय

म० प्र० द्विवेदी

[१३७]

जूही, कानपुर

१३–१०–२१

प्रणाम,

आपका ८ अक्टोबरका पोस्टकार्ड मिला। आप मंसूरीमें विहार कर रहे हैं। मैं अपने झोपड़ेमें पड़ा सैकड़ों चिन्ताओंकी मारसे अधमरा और हतबुद्धि हो रहा हूँ। कभी-कभी 'सरस्वती' वग़ैरहमें जो कुछ अटसट लिख देता हूँ उसका कारण लाचारी है। मेरी बुद्धिमें जड़ता आ गई है। सुकुमार विचार, मेघदूतकी भूमिकाके योग्य, मुझे नहीं सूझते। दो घंटे लिखनेकी चेष्टा की, पर एक सतर भी न लिख सका। हफ़्तों मिहनत करके आपकी कापीमें सूचनाएँ लिखी थीं। भूमिका लिखना तो ज़रा देरका काम था। परन्तु अब नहीं कर सकता। भूमिका आप कृष्णदाससे लिखाइए। मेरा नाम देना ही हो तो आप और वे जो कुछ लिख भेजेंगे मैं उसपर दस्तखत कर दूँगा। उस समय यदि कुछ विचार सूझ पड़े तो लेखको घटा बढ़ा भी दूँगा।

निवेदनकारी

म० प्र० द्विवेदी

[१३८]

दौलतपुर
४—७—२४

नमोनमः,

५ जूनका पोस्टकार्ड समयपर मिल गया था। मेघदूतकी कापी आज मिली। कृतज्ञ हुआ। धन्यवाद। मेरा स्मरण व्यर्थ ही किया। मैंने किया ही क्या है ? आपका यह अनुवाद आदर्श है और सभी अनुवादोंसे बढ़कर।

मैं बीचमें बहुत बीमार हो गया था। अभी चल-फिर नहीं सकता।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

नोट—पं० केशवप्रसाद मिश्रजी काशी आ गये थे।

[१३९]

[श्री मुरारीलाल केडियाके नाम पत्र]

दौलतपुर, रायबरेली
२२—९—३५

श्रीमान्

कृपा-पत्र मिला। आपने जो कार्य्यारम्भ किया है, ईश्वर करे उसमें आपको पूर्ण सफलता मिले। बहुत ही उपयोगी और श्रेयस्कर आयोजन है।

कार्डपर हस्ताक्षर करके लौटाता हूँ। *

वार्धक्यके कारण और कुछ करने-धरने या लिखने-पढ़नेकी शक्ति मुझमें नहीं। क्षमा कीजिए।

पुस्तकें मिल गईं। कृतज्ञ हुआ। पद्माकर-पद्मामृतका पान करके मैंने आनन्द-लाभ किया। उसके सम्पादक पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र क्या कभी हिन्दू विश्वविद्यालयमें तो न थे! इस नामके एक मिश्रजीने मेरा दिया हुआ वजीफा कई साल तक लेकर मुझे कृतकृत्य किया है। †

कृपापात्र

म० प्र० द्विवेदी



* श्रीकेडियाजीने सभी साहित्यकारोंके हस्ताक्षर संग्रह करनेका काम शुरू किया है। उनके उसी कार्डपर द्विवेदीजीने हस्ताक्षर करके वापस किया।

† पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र हिन्दी विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालयको ही वजीफा दिया था।

पं० देवीदत्त शुक्ल

पं० देवीदत्त शुक्लका जन्म संवत् १९४५ में हुआ। यह उत्तर प्रदेशके उन्नाव ज़िलेके पुराना बकसर नामक गाँवके रहनेवाले हैं। अब प्रयागमें रहते हैं।

शुक्लजीने सेंट्रल हिन्दूकालेज बनारसमें एफ० ए० तक शिक्षा प्राप्त की है। लड़कपनसे ही साहित्यिक ग्रन्थोंके अध्ययनका इनको शौक था। आपने संस्कृतका भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है। रायपुर ज़िलेके एक स्कूलमें अध्यापनका कार्य किया था। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीके कहने पर सन् १९१९ ई० में सरस्वतीमें आये।

शुक्लजीका गाँव पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीके गाँव दौलतपुरसे दो मीलके फासले पर था। शुक्लजी प्रारम्भसे ही साहित्यिक रुचिके थे; इसलिए वह द्विवेदीजीके सम्पर्कमें आ गये। द्विवेदीजी ही शुक्लजीके साहित्य-गुरु थे। द्विवेदीजीका शुक्लजीसे घरेलू सम्बन्ध था। द्विवेदीजीके अनेक महत्त्वपूर्ण संस्मरण उनके पास हैं। द्विवेदीजीकी अनेक पारिवारिक और साहित्यिक बातें उनको याद हैं। प्रसन्नताकी बात है कि शुक्लजीने उन सबको लिख लिया है। आशा है उनके ये संस्मरण शीघ्र ही प्रकाशमें आ जायँगे।

[हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयागके संग्रहालयसे]

[१४०]

जूही, कानपुर
११-११-१५

नमस्कार,

पोस्टकार्ड मिला। दोनों लेख भी मिले। आपने बड़ी कृपा की। मैं बहुत कृतज्ञ हुआ। इन लेखोंको सरस्वतीमें निकालनेकी मैं अवश्य चेष्टा करूँगा।

अवकाश मिलनेपर कुछ न कुछ लिख भेजा कीजिए। जहाँ तक हो सके—भाषा सरल बोलचालकी हो। क्लिष्ट संस्कृत शब्द न आने पावें। मुहावरेका ख्याल रहे। वाक्य छोटे।

सब यथा योग्य—

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[१४१]

जूही, कानपुर
२०-११-१७

भाई देवीदत्त,

१७ ता० की चिट्ठी मिली। "हमें इस तरहकी भेंटें न चाहिएँ" यह जानकर रंज हुआ—

"ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुंक्ते भोजयते चैव षड्विधं मित्रलक्षणम्॥"

यदि मुझे आप अपना बन्धु बनाना नहीं चाहते तो क्या मित्र-भाव भी रखना नहीं चाहते ?

आप जब जो चाहिए दीजिएगा। मैं ले लूँगा। आपको नहीं चाहिए, क्या यह मैं नहीं जानता, पर बन्धुत्व और मैत्री भाव क्या चाहनेकी अपेक्षा रखते हैं ?

म० प्र० द्विवेदी

[१४२]

जूही, कानपुर
१२–११–२०

नमस्कार,

६ नवंबरका पोस्टकार्ड मिला। विदाईकी पहुँच लिख चुका हूँ। मैंने तो बड़े बाबूसे खुद ही कहा था कि देवीदत्तको 'सरस्वती'का काम दीजिए। पर उन्होंने आपके लिए 'बालसखा'का स्वतंत्र काम देना ही मुनासिब समझा। मेरी समझमें तो 'सरस्वती'का काम 'बालसखा'से अधिक महत्त्वका है। उन्नति करनेके लिए इस काममें बहुत जगह है। योग्यता की बात जाने दीजिए। काम करनेसे तो अयोग्य भी योग्य हो जाते हैं। आप तो समर्थ योग्य हैं। मुझे यह जानकर संतोष हुआ कि मेरे बाद 'सरस्वती'से आपका संबंध हो जायगा। पूरी आशा है आप और बख्शी जी इस कामको बहुत अच्छी तरह कर लेंगे।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[१४३]

जूही, कानपुर
१७–११–२०

नमस्कार,

१३ की चिट्ठी मिली। पेंसिलका लेख भी मिला। कापी किये हुए लेखको मैंने पटल बाबूको भेज दिया। देखना जनवरीके आरंभमें छपे।

हाँ प्रेसकी चिट्ठीमें अभिनन्दन भी था और ५० रुपया महीना पेंशनकी घोषणा भी।

आज मुझे मालूम हुआ है कि आप 'बालसखा'का भी काम करेंगे और बख्शीजीकी मदद भी। यह और अच्छा हुआ। वह काम जिम्मेदारीका बना रहेगा, इधर 'सरस्वती' के कामका भी अनुभव होगा। पर काम बढ़ेगा। आशा है प्रेस अधिक कामका खयाल करेगा और जनवरीसे ६० के बदले आपको ६५ रु० देगा।

दिसम्बरकी कापी मैं भेज चुका। उसमें एक लेख मकड़ीपर है। उसके नीचे बख्शीजीसे लिखा दीजिए :

ब्रूस साहबकी पुस्तक What Spider Can Do के आधार पर।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[१४४]

जूहीकलाँ, कानपुर
२०–३–२४

नमस्कार,

जो पोस्टकार्ड आपने दौलतपुरके पतेपर भेजा था वह भी यहाँ परसों मिल गया। दूसरा भी। फरवरीकी 'सरस्वती' कल मिली। बहुत

विलम्बसे निकली। मार्चकी कापीके साथ मैंने एक नोट भेजा था 'अफ़ीम की बेरोकटोक बिक्री'। उसे आपने फ़रवरीमें ही निकाल दिया सो बहुत अच्छा किया। फ़रवरीकी कापीमें दो नोट और थे। १. विज्ञापन-विमर्श और २. देशी भाषाओं-द्वारा शिक्षा। वे फ़रवरीमें नहीं छपे। क्या मिले नहीं या खो गये? या छापना ठीक नहीं समझा गया, अगर सबसे पिछली बात हो तो संकोचकी ज़रा भी ज़रूरत नहीं। न फाड़ा हो तो अब उन्हें फाड़ फेंकिए। एक भी आक्षेप-योग्य नोट या लेख 'सरस्वती'में न छपना चाहिए।

कमलाकिशोरके रोगकी इतनी चिकित्सा होनेपर भी रुधिर-विकार नहीं गया। डाक्टरोंकी परीक्षासे यह बात मालूम हुई। विकारके चिह्न भी शरीरपर प्रकट हो गये हैं। अब आजसे उन्हें दवाकी पिचकारियाँ (injections) शरीरपर लगवानी होंगी। आठ-बार आठ-आठ रोज बाद। इसमें बड़ा खर्च है। लेकिन लाचारी है। इस दुःखके पीछे बड़ी हैरानी उठानी पड़ी है।

उधर उसकी छोटी बहन असाध्य रोगसे रुग्ण है, शरीरका फूलना, मासिक धर्म न होना, मूत्रमें शरीरस्थ धातुओंका गल-गलकर गिरना, बड़ा भयंकर है। मूत्र-परीक्षासे ये बातें डाक्टरोंको ज्ञात हुईं। यह भी एक प्रकारका प्रमेह है—Nephritis कहाता है, दवा करा रहा हूँ। खाना-पीना बन्द है, सिर्फ़ दूधपर रहना है।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

[१४५]

दौलतपुर, रायबरेली
५—११—२५

नमस्कार,

३ ता० का पोस्टकार्ड मिला। बहुत अच्छा। उन दो सतरोंको निकाल दीजिए। उनकी जगह नीचेका मज़मून रख दीजिए।

इस कविताकी दो पँक्तियोंका आशय है, कि न मालूम कबसे यह भारत सुनसान मसान हो रहा है। इस कारण हे व्योमकेशजी, झटपट आकर इसे विकराल विपत्ति-विषसे बचा लीजिए।

प्रसंग ठीक कर दीजिए। आवश्यकतानुसार शब्दोंमें फेरफार कर दीजिए या जो मजमून ऊपर मैंने लिखा है, उसे और किसी तरह लिख दीजिए।

इसी नोटमें एक जगह 'अफ़रीकाका सहारा' है। उसे 'अफ़रीकाके रेगिस्तान' कर दीजिए।

बख्शीजीके इस्तीफ़ेका हाल मुझे भी मालूम हो गया है। पटल बाबूने लिखा था। मैंने मुनासिब उत्तर दे दिया है। काम ज़रूर ज़ियादह होगा। पांडेजी वग़ैरहसे मदद लेकर किसी तरह निपटाइये। मेहनत ज़रूर पड़ेगी। मगर योग्यताकी परख ऐसे ही समयमें होती है। मेरे पास इस समय कोई लेख या नोट नहीं। लिख सकूँगा तो भेजूँगा।

और शिकायतोंके सिवा आजकल मेरा उन्निद्र रोग फिर उभड़ा है। बहुत तंग कर रहा है।

आपका

म० प्र० द्विवेदी

[१४६]

दौलतपुर

२९-१-२९

नमस्कार,

जनवरीकी 'सरस्वती'में आपने एक अच्छी दिल्लगी कर डाली। मेरे लेखके पहले पृष्ठके बीचमें तो मेरे नामका इश्तहार दे दिया। पर

अन्तमें 'द्विरेफ' ही रहने दिया। वहाँ भी क्यों नाम न दे दिया ? मैं अपना नाम इस लेखमें न देना चाहता था।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[१४७]

चौक, कानपुर
५—९—२९

नमस्कार,

घरपर तबीयत बिगड़ चली थी। इससे कुछ दिनके लिए यहाँ चला आया हूँ। 'सरस्वती' और 'बाल-सखा' वग़ैरह यहीं भिजवाया कीजिए—चौक कानपुर। सबसे कह दीजिएगा ।

कानपुरके पं० जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी' बड़े अच्छे कवि हैं। 'सरस्वती'के कविता-स्तम्भ चमकानेके लिए मैंने उनसे कहा था कि आपको कभी-कभी कविता भेजा करें। उन्होंने शायद भेजा भी। पर पुरस्कार देना तो दूर आपने उन्हें 'सरस्वतो' तक न भेजी। अब भेजिए। पहा० पं०* से उनकी कविता हज़ार दर्जे अच्छी होती है। उन्हें कुछ निश्चित मासिक पुरस्कार मिले तो वे हर महीने अच्छी-अच्छी कविता भेंजे।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

[१४८]

दौलतपुर
३—१०—३१

नमस्कार,

पो० का० मिला। टाइमटेबल आजकी डाकसे नहीं आया। भेजा है तो आ ही जायगा।

* मूल पत्रमें जो नाम है, उसे हमने ज्योंका त्यों नहीं दिया है।

........छोटी बिट्टीको जेठकी लड़कीके पतिके बड़े भाई हैं। यहाँ मुझसे मिलने भी आये थे। रीडरबाज़ोंकी अकसर खबर लिया करते हैं। इससे वह लेख उन्हें भेजा। मना किया था कि मेरा नाम प्रेसवालों तकसे न बतावें। उन्होंने विश्वासघात किया। अपने पेशेपर बट्टा लगाया। एडिटर ऐसा नहीं करते। दो-तीन हफ्ते पास रखकर लेखका अन्तिम अंश काटकर छापा। उसमें पाठकोंसे यह भी प्रार्थना थी कि कोई उसका अँगरेज़ी अनुवाद डाइरेक्टरको भेजे ताकि किताबकी ग़लतियाँ दूर कर दी जायँ। मुनियाँ ७ वर्षकी, मदरसेमें वही किताब पढ़ती है। तारवाले सबक़की बातें मुझसे पूछने लगी। वह समझी नहीं। तब मैंने उसे पढ़ा। पढ़नेपर लिखने, छापने और मंज़ूर करनेवालोंपर क्रोध आया। इससे वह लेख लिख मारा—क्या एक रद्दी काग़ज़पर घसीटकर भेज दिया। उस भले आदमीने मेरा नाम प्रकट कर दिया। बताइए अब क्या करूँ।

पं० रामप्रसादकी शकल-सूरत तक मैंने नहीं देखी। कौन कहाँके हैं, नहीं जानता। कभी पत्र-व्यवहार तक नहीं हुआ। भक्त-अभक्त होने की मुझे क्या खबर? कुछ दुश्मनी तो निकाली नहीं। सर्वसाधारणका लाभ समझकर लेख लिखा। जो प्रायश्चित्त कहिए करूँ। या उन्हींसे पूछिए क्या आज्ञा है। *........को तो मैं अब कुछ लिखना चाहता नहीं।

आपका

म० प्र० द्विवेदी

---

*नाम जान-बूझकर नहीं दिया जा रहा है। सम्बन्धित व्यक्ति आज हिन्दीके अध्यापक और साहित्यिकके रूपमें प्रसिद्ध हैं।

कानफिडेंशल

[१४९]

दौलतपुर
४–२–३२

नमस्कार,

आज ··· ने आपको एक कार्ड लिखा है। मैं उनसे और उनके कुटुम्बियोंसे यहाँ तक कि बिट्टी तक से—प्रसन्न नहीं। जबसे शादी हुई, ये लोग मुझसे रुपया ऐंठनेकी फ़िक्रमें रहते हैं, हालांकि अब तक मैं ६००) के ऊपर नक़द दे चुका। कल कहते थे, मुझे डोकरईमें जमींदारी मोल ले दो। तब मैं जत न कर सका। जो कुछ जीमें आया कह डाला। जीवनी लिखनेका ढकोसला सिर्फ़ पुस्तक बेंचकर रुपया कमानेसे है। न जनताके लाभके लिए, न मुझपर प्रेमके कारण, न हिन्दी-साहित्यकी हितैषणासे। मैंने लिखनेकी अनुमति नहीं दी, सिर्फ़ यह कहा कि मेरे विषयमें जिसका जो जी चाहे लिख सकता है। मेरी लेख-संग्रहकी कुछ पुस्तकें माँगी। मैंने दे दी हैं।

आपकी प्रश्नावली मैंने रख ली है। उत्तरमें कुछ लिखनेका वादा नहीं किया। ये सब बातें आपके जाननेके लिए लिखी हैं। मनमें रखिएगा। इस कार्डको फाड़ फेंकियेगा। इसकी पहुँच लिख भेजिएगा।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

[१५०]

दौलतपुर, रायबरेली
५–२–३२

नमस्कार,

पो० का० मिला। सर० की कापियाँ भी मिल गईं। मुझमें अब कुछ

विशेष लिखनेकी शक्ति नहीं। आपके कामका हो तो नीचेका श्लोक किसी संख्यामें दे दीजिएगा। किसीको दिखा लीजिएगा; कोई भूल व्याकरणकी न हो—

प्रार्थना

"कवीश्वरैर्वेदविदां वरैस्तथा
समर्चिता भक्तिभरेण या सदा।
समस्तविद्याविभवस्य देवता
सरस्वतीं रक्षतु सा सरस्वती॥"

आपका
म० प्र० द्विवेदी

[१५१]

मासिक पत्रिकाओंके कार्यकी व्याप्ति

हम लोगोंने जैसे और अनेक बातें विदेशियों—विशेष करके पश्चिमी देशोंके निवासियों—से सीखी हैं, वैसे ही मासिक पत्र और पत्रिकाएँ निकालना भी उन्हींसे सीखा है।

पश्चिमी देशोंने अपने मासिक साहित्यका बँटवारा-सा कर लिया है। ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, स्वास्थ्य, खेलकूद, व्यायाम, राजनीति आदि कितने ही विषय ऐसे हैं जिनके सम्बन्धमें अलग-अलग पत्र और पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। इससे बहुत सुभीता होता है। पाठक अपनी रुचिके अनुकूल अपने इच्छित विषयके पत्र लेते और पढ़ते हैं।

अपने देशमें शिक्षाकी कमी है। इस कारण कार्य्य विभाग या विषय-विभाजनसे काम नहीं चल सकता। क्योंकि पढ़नेवाले पर्याप्त

संख्यामें नहीं मिल सकते। इस दशामें हमें चाहिए कि हम अपने पाठकोंकी विद्या-बुद्धि, ज्ञान-लिप्सा और मनोरञ्जन आदि सभी बातोंका खयाल करके ऐसे ही लेखोंका प्रकाशन करें, जिनसे पाठकोंकी ज्ञान-वृद्धि होती रहे और साथ ही उनका मनोरञ्जन भी हो। हमें चाहिए कि अच्छे कागज़, अच्छी छपाई और सुन्दर चित्रोंको सिर्फ़ पाठकोंको अपनी तरफ़ खींच लानेका साधन मात्र समझें। उसे गौण और ज्ञान वर्धनकी चेष्टाको मुख्य समझना चाहिए। इसके साथ ही भाषा इतनी सरल होनी चाहिए, जिसे अधिक-से-अधिक पाठक आसानीसे समझ सकें। अपनी विद्वत्ताके प्रकटीकरणकी कदापि चेष्टा न करनी चाहिए।

'सरस्वती' यद्यपि विशेषतया साहित्य-विषयक पत्रिका है। पर उसने अपना नाम उस देवताका ग्रहण किया है जो समस्त वाङ्मयकी अधिष्ठात्री है। अतएव उसे सभी विषयों पर लेख प्रकाशित करनेका अधिकार होना चाहिए। पर उसके उद्देश्य और आकारको देखते हुए यह असम्भव-सा है। इस दशामें उसे अधिक-से-अधिक ज्ञानवर्धक लेख प्रकाशित करके पाठकोंका हित-साधन करना चाहिए।

साथ ही उनके शुद्ध मनोरञ्जनकी भी कुछ सामग्री अपने प्रत्येक अङ्कमें प्रस्तुत करके, पिछले महीनेमें हुई देशकी मुख्य मुख्य हलचलोंका भी उल्लेख करना चाहिए। सभी लेखों और नोटोंकी भाषा यथासम्भव सरल कर देनेके लिए सम्पादकको सदा सचेष्ट रहना चाहिए।

पं० देवीदत्तजी, इसे पटल बाबूको सुना दीजिएगा। पहुँच लिखिएगा।

१६-२-१९३३ म० प्र० द्विवेदी

[१५२]

दौलतपुर, रायबरेली
२—३—३४

नमस्कार,

पो० का० आज मिला। पञ्चाङ्ग और पुस्तक कल्ही मिल गई थी। वाममार्गकी सैर कर ली। आपने यह पुस्तक खूब ही लिखी। हिन्दीमें इसे मैं अद्वितीय समझता हूँ। इससे इस सम्प्रदायसे सम्बन्ध रखनेवाले कितने ही भ्रम दूर हो सकते हैं

फ़रवरीकी 'माधुरी'में मैंने वेंकटेशजीका लेख देख लिया। मैं उनका पहले हीसे कृतज्ञ था। अब तो पूछना ही क्या है? लेखमें मेरी आलोचना कम, ग्रन्थकी और सभाके कर्णधार महाशयों हीकी अधिक है। तिवारी जीने अपनी छात्रावस्थामें मेरी बहुत मदद की है! उसका खयाल जब आता है तब मैं उनके उपकारके भारसे दब-सा जाता हूँ। मिलें तो उनसे कहना, मुझपर झूठे लाञ्छन न लगाया करें। 'कुमारसंभव'में कालिदासने अनुचित शृङ्गार वर्णन किया है। इस कारण मैंने कविकी खबर "कालि-दासकी निरङ्कुशता" के शुरू हीमें ली है। पर मुझे स्मरण होता है कि वेंकटेशजीने अपने किसी लेखमें मुझपर यह इलज़ाम लगाया है कि मैंने उसपर कुछ कहा ही नहीं। मेरी तबीयतका हाल आप क्या पूछते हैं? अच्छे रहनेपर भी आप मुझे बीमार ही समझिए। पटल बाबूकी कृपासे भोजन-वस्त्रकी कमी नहीं, इस सुखको मैं थोड़ा नहीं समझता।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

[१५३]

दौलतपुर, रायबरेली
१६–४–३३

शुभाशिषः सन्तु,

अप्रैलकी 'सरस्वती'के "नये आयोजन" में सम्पादकोंने जो मेरा अभिनन्दन किया है वह सीमासे आगे निकल गया है। तथापि उसे पढ़कर मेरी आखोंसे आनन्दाश्रु टपक पड़े। अभिनन्दन तो ग़ैरोंहीके द्वारा किया गया अच्छा लगता है। मैं तो इंडियन प्रेसको अपना अन्नदाता समझता हूँ। वह मुझे अपना आश्रित समझे रहे। यही प्रार्थना है। *

कृतज्ञ
म० प्र० द्विवेदी

[१५४]

दौलतपुर
२०–१०–३८

नमस्कार,

बहुत समय हुआ, मैंने 'सरस्वती'में 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि' पर एक या दो लेख लिखे थे। उन्हें देखकर काशीके प्रेमवल्लभ शास्त्री मुग्ध हो गये। उन्होंने समस्त पुस्तकका हिन्दी भावार्थ लिखा—सान्वय। वह इण्डियन प्रेस, काशीमें मूल समेत छप रहा है। अद्भुत पुस्तक है। शास्त्रीजी अल्पवयस्क पर बड़े अच्छे कवि और पण्डित हैं। ग़रीब हैं। माँग जाँच

* यह पत्र इ० प्रे० के मालिक श्री हरिकेशव घोषको लिखा गया था।

कर किसी तरह छपाईका खर्च दे रहे हैं। अभी देना बाक़ी है। पुस्तककी छपाई समाप्त प्राय है। ज़रा एक कॉपी मँगाकर देखिए। इण्डियन प्रेस कापी राइट लेना चाहे तो थोड़े ही खर्चसे मिल सकता है। ज़रा पूछिए। उत्तर दीजिए। मेरे पासके छपे फ़ार्म पं० मातादीन ले गये हैं।

आपका
म० प्र० द्विवेदी



पं० किशोरीदास वाजपेयी

श्री किशोरीदास वाजपेयीकी प्रारम्भिक शिक्षा वृन्दावनमें हुई। १९१९ में काशीसे शास्त्री किया। १९३०, ३४ और ४२ के राष्ट्रिय आन्दोलनोंमें भाग लिया। नौकरीसे हटाये गये, सजा हुई और नजरबन्द भी रहे।

आगरासे निकलनेवाले "मराल" नामक मासिक पत्रका सम्पादन किया। व्याकरणके अधिकारी विद्वान् माने जाते हैं। 'द्वापरकी राज्यक्रान्ति', 'लेखन कला', 'अच्छी हिन्दीका नमूना', 'मानवधर्म मीमांसा', 'कांग्रेसका संक्षिप्त इतिहास' और 'ब्रजभाषाका व्याकरण' आदि आपके ग्रन्थ प्रकाशित हैं।

पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीके भक्तोंमें हैं। आजकल कनखल, हरद्वारमें रहते हैं। आपसे द्विवेदीजीसे बहुत पत्र-व्यवहार हुआ था। आपके पत्र हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयागमें सुरक्षित हैं।

[हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके संग्रहालयके सौजन्यसे]

[१५५]

दौलतपुर, रायबरेली
१२—८—३१

शुभाशिषः सन्तु,

८ अगस्तका पोस्टकार्ड मिला। आपकी कौटुम्बिक व्यवस्था ज्ञात हुई। मेरा भी कुछ-कुछ हाल वैसा ही है। अपना निजका कोई नहीं, दूर-दूरकी चिड़ियाँ जमा हुई हैं। खूब चुगती हैं। पुरस्कार स्वरूप दिन-रात पीड़ित किये रहती हैं।

प्रयागमें वहीं कहींके राजा साहब या उनके भाई मुझसे मिलने आये थे। साथ में, शायद उनके प्राइवेट सेक्रेटरी एक ग्रेजुएट भी थे। नाम भगवतीचरण या कुछ ऐसा ही था। सारे पुराणोंका हिन्दी अनुवाद निकालने वाले हैं। मुझसे किसी योग्य सहायकका नाम पूछते थे, जो उनके यहाँ रहकर वह काम करे। इसीसे मैंने आपसे आपकी आमदनी पूछी। मगर आप जहाँ हैं वहीं रहें। वहीं सब तरहका सुभीता है। ये राजे देहात में रहते हैं। उनकी बातोंका कुछ ठिकाना भी नहीं।

पं० देवीदत्तके नाम चिट्ठी भेजता हूँ। जी चाहे भेज दीजिएगा। नहीं तो फाड़ डालिएगा। मेरी राय तो है 'न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्'।

'स्तुति-कुसुमांजलि' में एक स्तुति है कवि-काव्य प्रशंसा स्रोत। आपको भी पसन्द हो तो उसके चुने हुए श्लोकोंको सानुवाद कहीं प्रकाशित करा दीजिएगा। लोग देखें अच्छे कवि और अच्छी कविता किसे कहते हैं, कल्याण वाले स्तुति कु० का अनुवाद मुझसे कराना चाहते हैं। एक लेखक भी देनेको तैयार हैं। पर मुझमें इतनी शक्ति नहीं। किसीने अनुवाद उन्हें भेजा भी है पर वह इन्हें पसन्द नहीं।

मैं ज्वालापुरमें महीनों सपत्नीक रह चुका हूँ, वहाँके गुरुकुल। कनखल, हरद्वार सब देखे हुए हैं। अब कहीं जाने लायक नहीं। शरीर शिथिल और जर्जर है।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[१५६]

दौलतपुर, रायबरेली
२९—७—३३

भैय्या किशोरीदास,

चिरञ्जीवी भूयाः,

जुलाईकी 'माधुरी'में आपका लेख पढ़े बिना मुझसे न रहा गया, मनोमुकुल खिल उठा। आप सहृदय ही नहीं, काव्यज्ञ और साहित्यशास्त्रज्ञ भी हैं। कभी-कभी इसी तरह इन लोगोंको खटखटा दिया करो। इनकी हरकतें देखकर यदा-कदा मेरा जी जल उठता है। कविता कविकर्म्मके आप विशेषज्ञ हैं और—

"विना न साहित्यविदा परत्र
गुणः कथञ्चित्प्रथते कवीनाम्।
आलम्बते तत्क्षणमम्भसीव
विस्तारमन्यत्र न तैलबिन्दुः॥"

आप कभी-कभी ऐसे वाक्य लिख देते हैं।

पहले सम्पूर्ण मनोभावोंको दो श्रेणियोंमें विभक्त कर दिया गया है।

संभले रहिए, महावैय्याकरण पं० कामताप्रसाद गुरु कहीं खफ़ा न हो जायँ।

मेरी तबीयत आजकल अच्छी नहीं।

शुभाकांक्षी
म० प्र० द्विवेदी

[१५७]

दौलतपुर, रायबरेली
१७—११—३३

आशीष,

मुकुलित वग़ैरहके साथ स्फुटको आप भूल गये। हिन्दीके कोविद उसे फुटकरके अर्थमें लिखते हैं। जिसने लघु-कौमुदीके भी दर्शन नहीं किये उसे बच्चोंका तारतम्य आप सिखलाना चाहते हैं।

आपके लेख देखकर मुझे बड़ी ख़ुशी होती है। आप ख़ूब लिखते हैं। खेद है कि मैं बहुत ही कम पढ़ सकता हूँ। मेरा उन्निद्र रोग आजकल बहुत बढ़ गया है। व्याकुल रहता हूँ। एक कार्ड लिखनेसे भी गश आ जाता है। स्मृतिका यह हाल है कि आपका पता भूल गया।

शुभेच्छु
म० प्र० द्विवेदी

[१५८]

दौलतपुर, रायबरेली
२२—२—३४

शुभाशिषः सन्तु,

आपका भेजा हुआ ब्राह्मी तैल एक हफ़्तेसे लगा रहा हूँ। फल कुछ समय बाद शायद मालूम हो।

मेरी आँखोंमें मोतियाबिन्दु प्रारम्भ हो गया है। एक अमेरिकन दवा आखोंमें अब तक डालता रहा हूँ। लाभ नदारद। अब एक देशी दवा शुरू की है। पण्डित श्रीराम शर्म्माने कमलमधु भेजा है। यह नुसखा पं० शालग्राम शास्त्रीका है। बड़ी तारीफ़ सुनी है, इसे भी आँखोंमें डालूँगा।

आजकल मेरा घर सूना-सा है। भानजे साहब और उनकी पत्नी कानपुरमें हैं। दोनोंको कुछ शिकायत थी। दवा कराने गये हैं।

हिन्दीके पत्रों और पत्रिकाओंको कुछ समयसे एक संक्रामक रोग हो रहा है। इनके सम्पादक उर्दूकी नई-पुरानी दूषित कविताएँ छाप रहे हैं। कुछ हिन्दीके कवि भी उर्दूकी बहरोंमें फातफूत कर रहे हैं। उधर उर्दूवाले हिन्दीके दोहों और चौपाइयों तककी दाद नहीं देते। वहीं अरबी-फ़ारसीकी बहरें और एक ही छन्दमें वही बेतुकी कई तरहकी बातें। बिस्मिलजी भी खूब ज़ोर बाँध रहे हैं। पुराने उर्दू कवि तो हिन्दीमें, कोई-कोई, कुछ लिख भी गये हैं। पर आजकलके शायर हिन्दीको अछूत समझ रहे हैं। आपको भी ये बातें खटकें तो कभी-कभी हिन्दीके गुमराह लिक्खाड़ोंकी खबर तो ले लिया कीजिए।

आशा है, आप सकुटुम्ब अच्छी तरह हैं।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[१५९]

दौलतपुर, रायबरेली
२६—७—३४

शुभाशिषो विलसन्तु,

आपका पिछला कार्ड पढ़नेपर मुझे आपका अनुरोध मानना पड़ा। सुबह चाय पीना छोड़ दिया। सिर्फ़ पाव डेढ़ पाव दूध पी लेता हूँ। अखबार देखनेमें भी कमी कर दी। इससे कुछ लाभ होता मालूम देता है। उचित परामर्शके लिए आपको धन्यवाद।

अजी वह भूमिका नहीं, प्रस्तावना है जिसकी आपने खबर ली है। बाबू श्यामसुन्दरदासकी लिखी प्रस्तावनामें और किस बातकी आशा की

जा सकती थी। अफ़सोस है राय कृष्णदासने भी उसपर दस्तखत कर दिये। बाबू साहबके कोशमें नन्द धातु और अभिनन्दन शब्दका अर्थ है भली बुरी आलोचना करना।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[१६०]

दौलतपुर, रायबरेली
१-९-३४

शुभाशिषः सन्तु,

भारतमें वीरभद्रके दर्शन हुए। ये लोग सर्वदा उपेक्षाके पात्र हैं। मेरी एक पुस्तक है:—'वाग्विलास' उसमें एक लेख है 'आर्यसमाजका कोप'। उसमें इन लोगोंकी चित्तवृत्तिका निदर्शन है और अंतमें लिखा है:—

"येषां चेतसि मोहमत्सरमदभ्रान्तिः समुज्जृम्भते
तेऽप्येते दयया दयाघन विभो सन्तारणीयास्त्वया ॥"

न देखी हो तो लहेरियासरायसे एक कापी भिजवाऊँ। आशा है आप अच्छी तरह हैं। मेरा हाल वही यथापूर्व है।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[१६१]

दौलतपुर
८-९-३४

शुभाशिषः सन्तु,

४ ता० का पोस्टकार्ड मिला। कविताकी पहुँच शायद कल ही लिख चुका हूँ।

हिन्दी पुस्तक-भंडार, लहेरियासरायको लिख दिया कि एक कापी 'वाग्विलास'की आपको भेज दें।

चाय छूट गई। अब उसकी याद भी नहीं आती। मगर नींदका क़रीब-क़रीब वही पुराना हाल है। वर्षामें अतिसार संग्रहणी अक्सर हो जाती है। कुपथ्यसे बचिए। सुपच भोजनसे शिकायत जाती रहती है।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[१६२]

दौलतपुर, रायबरेली
२३-९-३४

शुभाशीर्वाद,

आपने तो पद्य-पत्रोंका ताँता बाँध दिया। १७ ता० का भी पत्र मिला। आप भावमयी कविता कर सकते हैं। आजकलके कितने ही तुक्कड़ आपके सामने कोई चीज़ नहीं। कविताका प्रकाशन अब शुरू कर दीजिए। मगर मुझे जब कभी लिखना गद्यमें ही लिखना। गद्यमें बिना प्रयास जी खोलकर लिखनेको मिलता है। 'वाग्विलास'में आपको मेरे झगड़ालूपनके नमूने मिले होंगे। मेरी पूर्वचर्या विलक्षण थी। विवाद कर बैठता था। सहनशीलताका अभाव-सा मुझमें था। वह पुस्तक पढ़नेपर कहीं आप मुझसे विरक्त या उदासीन न हो जायँ, यह डर मुझे था। वह अब दूर हो गया।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[१६३]

दौलतपुर, रायबरेली
१५-८-३५

शुभाशिषां राशयो विलसन्तु,

११ अगस्तका पो० का० मिला। खुशी हुई। आँखोंका वही हाल है। कमजमधुने कुछ फ़ायदा नहीं किया। जान पड़ता है, जैसे और इन्द्रियाँ शिथिल हो रही हैं, वैसे ही दृष्टि भी। दवादारू व्यर्थ है।

शीतकालमें इधर आना हो तो मुझसे ज़रूर मिलना।

गंगा पहले तो दर्शन देती थी, अब कई महीनेसे नहीं। ज़रूरत भी नहीं। पढ़ नहीं सकता।

उस कहानीमें लछिमनपुरके एक महाशयका जिक्र है, वे शायद पं० शिवपाल अग्निहोत्रीथे। डाकखानोंके सुपरिण्टेण्डेण्ट थे। झाँसीमें हम दोनों अक्सर मिलते थे। एक बार उनके घर भी मैं हो आया हूँ।

'आदर्श'के पिछले अंकमें सम्पादक महाशयने कुछ पत्र-पत्रिकाओंको फटकार बताई है। एक फटकार मुझपर भी पड़ी है। लिखा है। मैं बदलेमें आये हुए पत्र लिखकर लौटा देता था। पर बात ऐसी नहीं।

किसी आर्यसमाजीने एक पुस्तक समालोचनाके लिए भेजी। उसमें लिखा था स्वामी दयानन्दके गुरु भट्टोजीके चित्रपर नाम पर जूते लगवाते थे। इसपर मैंने कड़ी टिप्पणी की। आर्यसमाजी बिगड़े। एक सरकुलर निकाला कि कोई समाजी मुझे पुस्तकें न भेजा करे। जवाब मैंने 'सरस्वती'में दिया। 'आर्यसमाजका कोप' उसमें शायद मैंने लिखा कि अगर कोई भेजेगा भी तो मैं न लूँगा लौटा दूँगा। इसी प्रतिज्ञाकी पूर्तिमें मैंने शायद कुछ पुस्तकें लौटाई हों। बदलेके पत्र-पत्रिकाएँ नहीं लौटाईं। सम्पादक रामचन्द्रजी महाशय आप हीके शहरमें हैं। इससे मैंने यह कैफ़ियत दे दी है।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[१६४]

दौलतपुर, रायबरेली
२४–८–३५

शुभाशिषः सन्तु,

२० अगस्तका पत्र मिला। आपके कुछ दोहे कहीं छपे हुए मैंने देखे हैं। मुझे बहुत अच्छे लगे। उनमें प्रसाद गुण बहुत काफ़ी जान पड़ा। ज़रूर छपाइए। नाम भी पुस्तकका आपने अच्छा रखा। मैं होता तो मुकुल, मंजरी, मानजी, मनोविनोद आदि नाम रखता।

मैं सुरमा न लगाऊँगा। जाने दीजिए। भगवान्के भरोसे पड़ा रहूँगा।

शुभानुध्यायी
म० प्र० द्विवेदी

[१६५]

दौलतपुर, रायबरेली
७–१–३६

शुभाशिषः सन्तु,

'तरंगिणी'की कापी मिली। देखकर चित्त प्रसन्न हुआ। बहुत अच्छी छपी। काग़ज़ जिल्द सभी सुन्दर हैं।

भूमिका तो अनेक ज्ञातव्य बातोंसे पूर्ण है। यथेष्ट पाण्डित्य-प्रदर्शक है।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[१६६]

दौलतपुर, रायबरेली
७-३-३७

शुभाशिषो विलसन्तु,

४ ता० का कार्ड मिला। आपको पुत्रकी प्राप्ति हुई यह सुनकर बड़ी खुशी हुई। मधुसूदनके जोड़का कोई अच्छा नाम नहीं सूझ पड़ता। मेरी बुद्धिकी जड़ता बढ़ गई है। नीचेके नामोंमेंसे कोई पसन्द हो तो चुन लीजिए।

मुकुन्द माधव,	मयंक मोहन	राधिकारमण	श्रीकान्त
शशांक सुन्दर	राधिका रंजन	रजनीकान्त,	शशिशेखर
कमलाकान्त,	राजीवलोचन	चारुचन्द्र।	

मनोरमाका विवाह कल रातको हो गया। बड़ी भीड़ घरमें भी, बाहर भी है।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[१६७]

दौलतपुर
१५-३-३७

शुभाशीष,

१२ का पोस्टकार्ड आज मिला। आपके बालबच्चे अच्छी तरह हैं यह जानकर ख़ुशी हुई।

पुस्तकोंका समर्पण बिलकुल ही बेकार है। मैंने भी अपनी दो एक पुस्तकोंका समर्पण पहले किया था। मगर फिर वैसी भूल नहीं की।

आपके प्रेमपाशमें मैं यों ही फँसा हूँ। समर्पणसे क्या होगा? पर यदि आपका कुछ काम निकलता हो या आपको किसी प्रकारकी सन्तुष्टि होती हो तो कीजिए। मुझे कोई आपत्ति नहीं।

आप विवाहमें आते तो कुछ पाते। बड़ी भीड़ थी। बाराती तो २३ ही थे। पर मेरे माननीय आमंत्रित जनोंकी संख्या ६०, ७० तक हो गई थी। सब गये, सिर्फ़ ३ बाक़ी हैं। आना तो मधुसूदनको ज़रूर लाना।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

[१६८]

दौलतपुर
५–५–३८

शुभाशिषो विलसन्तु,

जयन्तीकी बधाईका पोस्टकार्ड मिला। धन्यवाद। आपने मुझे मेरे जन्म-दिनकी याद दिला दी। मुझे ही भूल गया था। कुटुम्बियोंको कैसे याद रहता। किसीने कढ़ी तक बनाकर नहीं चाटी। मेरे कुटुम्बी तो आपही की तरह सन्मित्र हैं। उन्हींका भरोसा है। चिरञ्जीवी भूय्याः।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

विविध-पत्र

[१६६]

पं० गुरुदयाल त्रिपाठीको †

दौलतपुर, रायबरेली
१-१०-३०

श्रीयुत त्रिपाठीजीको प्रणाम,

चन्द्रपालसिंहने आपका पत्र दिया। आपने और पं० शिवगोविन्दने बड़ी कृपा की जो बाग़के मुक़द्दमेंमें पैरवी कर दी। मैं कहाँ तक आपका शुक्रिया अदा करूँ। मैं आमरण आपसे उऋण नहीं। कृपा करके डिप्टी साहबके हुक्मकी नक़ल भिजवा दीजिए।

पर-सवर्णका सवाल हिन्दीमें उठाना अनुचित है। उसका खयाल तो संस्कृतमें भी लोग कम ही रखते हैं। आप खुशीसे अन्त, दिसंबर, कर्म्मकांड आदि लिखिए। इस तरहकी लिखावट सर्वथा शुद्ध है। नागरी प्रचारणी सभा, काशी वाले तो अनुस्वार हीसे काम चलाते हैं। उनके इतने बड़े कोशमें भी पर-सवर्णका खयाल नहीं रक्खा गया।

जिस वक्त चन्द्रपाल चलने लगे मेरे पास एक भी रुपया न था। १) का नोट बतौर Curio या curiosity के बक्समें रख छोड़ा था। लाचार वही भेज दिया। मैंने कहा, शायद ट्रेज़रीवाले ले लें। मगर Currency office के सिवा शायद ही कोई उसे लेकर रुपया दे। आप उसे मेरी बेवक़ूफ़ीका चिह्न समझकर पड़ा रहने दें। आज १) मनीआर्डरसे भेजता हूँ। कोर्ट फीस वग़ैरहकी क़ीमत तो पं० शिवगोविन्दको न देनी पड़े। मैं उनसे और आपसे कभी उद्धार नहीं। मिहनताना देने या भेजनेकी तो हिम्मत ही नहीं होती।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

---

† पं० गुरुदयाल त्रिपाठी, एडवोकेट, रायबरेली।

[१७०]

दौलतपुर, रायबरेली
१३ अगस्त ३४

श्रीमान् त्रिपाठीजीको सादर प्रणाम !

बड़े असमंजसमें पड़कर आज आपको कुछ कष्ट देने पर उतारू हो गया हूँ।

रायबरेलीमें श्रीमान् शिवशंकरजी त्रिपाठी नामके कोई वकील—शायद एडवोकेट—हैं। आपके वंशज नहीं तो आपके फिरके ही के ज़रूर होंगे। डिस्ट्रिक्टबोर्डकी चेयरमैनीका भारी बोझ आजकल उन्हींके दोनों कन्धों पर है। मेरी तरफ़से हाथ जोड़कर मेरी एक प्रार्थना उन तक पहुँचाइए और अपनी तरफ़से उसकी मंजूरीके लिए उनसे सिफ़ारिश भी कीजिए।

यहाँ दूर-दूर तक न तो कोई अस्पताल या दवाखाना है और न औषधालय। वैद्य एक आध दूर-दूरके मौजोंमें हैं। पर चतुरी चमार और प्रेमा पासीको मुफ्त दवा देने वाले नहीं। मैंने अपने खर्चसे कुछ आयुर्वेदिक और कुछ एलोपैथिक पेटेंट दवाएँ मँगा रक्खी हैं। भानजा मेरा होमियोपैथिक बक्स लिये बैठा रहता है। मगर मैं एक मामूली गृहस्थ हूँ। यह सब खर्च नहीं उठा सकता। दिनमें दस पाँच मरीज़ घेरे ही रहते हैं। ग़रीबोंका दुख-दर्द नहीं देखा जाता।

यहाँ तक लिख चुकने पर लोकई चमारकी दुलहिन सिर पीटते आई। उसका १४ वर्षका लड़का बीमार है। हैज़ेके दस्त आ रहे हैं। उसे अर्क कपूर दिया। न फ़ायदा होगा तो क्लोराडिन दूँगा।

तीन वर्षसे बोर्डको लिख रहा हूँ कि यहाँ एक वैद्य भेज कर औषधालय खोल दो। पहले तो बोर्डने ऊलजलूल एतराज़ किये। फिर

मंजूरी दे दी। लिखा कि कहींका औषधालय बन्द करके यहाँ खोल दिया जायगा। तब तक बोर्ड पर सरकारने कब्ज़ा कर लिया। अब जो फिर हमलोगोंकी अमलदारी हुई तो कोई चिट्ठीका जवाब तक नहीं देता।

राजा साहब शिवगढ़की मुझपर कृपा है। वे दौलतपुर आनेवाले भी थे। पर मैं उन दिनों बीमार था। उन्होंने अपने सिर पर, खुद ही लाई हुई, बला पूर्वनिर्दिष्ट त्रिपाठीजी पर पटक दी है। बाबू सीतलासहाय की मारफ़त राजा साहबसे सिफ़ारिश कराई तो त्रिपाठीजी हीले हवाले कर रहे हैं। कहते हैं बजटमें गुंजायश नहीं, पहलेसे क्यों नहीं कहा! जैसे बोर्डके दफ्तरके काग़ज़ात नष्ट हो गये हों! प्रार्थना कीजिए कि किसी और मदमें ढाई तीन सौकी बचत निकाल लें, या खास तौरसे मंजूरी मांगें, या बजटसे ज़ायद खर्च हो जाय तो Supplementary बजट पेश करें। करने और देनेके हज़ार तरीक़े हैं। इस तरफ़के देहाती सिर्फ़ बोर्डके स्कूलोंसे ही फ़ायदा उठाते हैं। हम लोगोंसे अब Tax भी ज़्यादा लिया जाता है। हम लोगोंके लिए दवा-दारूका भी तो कुछ प्रबन्ध करना चाहिए।

आपके भाई साहब या आपके अन्य मित्र जो बोर्डके मेम्बर हों उनसे भी कहिए, कुछ मदद करें। मुझे तो विश्वास है कि आपकी सिफ़ारिशसे चेयरमैन त्रिपाठीजीका हृदय ज़रूर पसीज उठेगा और वे मेरा मनोरथ सफल करके यहाँके दीन-दुखियोंके आशीर्वादका पुण्य प्राप्त करेंगे। उन्हें महाभारतके इस श्लोककी याद दिलाइएगा—

"न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापवर्गकम्।
कामये तापतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥"

कृपापात्र

महावीरप्रसाद द्विवेदी

[१७१]

दौलतपुर, रायबरेली
७–११–३४

श्रीमान् त्रिपाठीजीको बहुशः प्रणाम

कल सुबह एक पोस्टकार्ड मैं आपको भेज चुका हूँ। कल ही शामकी डाकसे ३ ता० का आपका कार्ड मिला। अनेक धन्यवाद।

"कल्याणमस्तु भवतां हरिभक्तिरस्तु।"

अब जो काम शेष रह गया है उसे कृपापूर्वक सिद्ध करा दीजिए। अन्यत्र यदि कम्पौंडर रहता हो तो वह भी दिया जाय। सबके लिए रहने की जगह बनी बनाई तैयार है। मेरे संग्रहमें आयुर्वेदकी ढेरों पुस्तकें हैं। डाक्टरी और होमियोपैथीकी भी हैं। जो कोई भेजा जाय अनुभवी और संस्कृतज्ञ हो। उसे अपनी विद्या और चिकित्सा-कौशलकी उन्नतिके लिए यथेष्ट सामग्री है। यहाँ दूर-दूर तक चिकित्साका प्रबन्ध नहीं। मेरा भानजा दिन भर दीन-दुखियोंको होमियोपैथी दवाएं बांटा करता है। मेरे पास भी आयुर्वेदिक और कुछ पेटेंट दवाएं हैं। उनका उपयोग मैं भी औरोंके लिए करता हूँ।

आपकी कृपाके लिए पुनरपि धन्यवाद।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

[१७२]

C/O कमर्शल प्रेस,
बगिया मनीराम, कानपुर
१३–१२–३४

श्रीमान् त्रिपाठीजीको सादर प्रणाम,

गाँवपर मेरा उन्निद्रता रोग बहुत बढ़ गया। और भी कुछ शिकायतें

नई-नई पैदा हो गई। इससे यहाँ इलाज कराने चला आया। अब कुछ-कुछ आराम है। यहाँ आये १ महीना हो गया। २५ तारीख़ तक घर लौट जानेका विचार है। शर्त यह है कि तबीयत ठीक रहे।

बन्दूक रखना मेरे लिए जीका जंजाल हो रहा है। मैं जमा कर देना चाहता था। पर घरवाले रखना चाहते हैं। मेरी तरफ़ चोरियाँ बहुत होती हैं। डाके तक पड़ जाते हैं। पिछली कई दफ़े वहाँ दौरेपर हाकिमोंसे लायसेंस नया करा लिया था। इस साल यहाँ पड़ा हूँ। लायसेंस भेजता हूँ। तीन सालके लिए नया करा लीजिए। फीस ७॥) और ऊपरी ख़र्च २॥) इस तरह १०)का मनीआर्डर आज आपके नाम भेज रहा हूँ। लैसंस इसी चिट्ठीके साथ है। वकालतनामेका फ़ार्म भी। एक चिट्ठी भी D. C. के नाम भेजता हूँ। ज़रूरत पड़े तो दे दीजिएगा। वे मुझे जानते हैं; मेरे घर आये हैं। जो न जानते हों उनसे कह दीजिएगा—ख़ैरख़्वाह हूं; पंचायतका पञ्च हूँ इत्यादि। काम हो जानेपर लायसेंस रजिस्ट्री करके लौटा दीजिएगा। २३ दिसम्बरके बाद पत्र दौलतपुर भेजिएगा। पं० शिवगोविन्दजी कृपा करके मेरे वकील हो जायँ। कष्टके लिए क्षमा-प्रार्थना।

कृपापात्र

महावीरप्रसाद द्विवेदी

[१७३]

दौलतपुर, रायबरेली

१५-१-३५

श्रीमान् त्रिपाठीजीको प्रणाम,

सेमरीके लाल वीरेन्द्रबहादुरसिंहने रायबरेलीमें कोई संघ स्थापित किया है या करनेवाले हैं। उसके सम्बन्धमें मुझसे रायबरेली चलनेको इसरार कर रहे हैं। मैं इन बातोंसे सदा दूर रहा हूँ और रहना चाहता

हूँ। मैं प्रसिद्धि नहीं चाहता। मेरी इज़्ज़त आप लोगोंके हाथ है। कृपा करके नीचे लिखी हुई बातोंका जवाब दीजिए:—

इस आयोजनमें अग्रणी कौन हैं? शहरके और ज़िलेके कौन कौन संमाननीय सज्जन इसके पृष्ठपोषक हैं? आजतक कितने सज्जन इसके मेंम्बर हुए हैं? संघके लिए कौन-सा स्थान चुना गया है; वह कैसा और किसका है? संघकी नियमावली या Article of Association बन गई है या नहीं? बनी है तो कहाँ है? आपकी निजकी राय इसके सम्बन्धमें क्या है? कष्ट तो होगा; पर रायबरेलीमें आपके सिवा मेरा सहायक और कोई नहीं। मुझे उपहाससे बचा लीजिए।

बन्दूकके लायसेंसकी किताब मिल जाने पर भेज दीजिएगा। बन्दूक मेरे पास १ जनवरीसे बिला लायसेंस है।

कृपापात्र

म० प्र० द्विवेदी

[१७४]

दौलतपुर, रायबरेली
२३-१-३५

श्रीयुत त्रिपाठीजीको प्रणाम,

२० जनवरीका कृपापत्र मिला। संघके विस्तृत समाचारके लिए धन्यवाद। इधर दो तीन महीनेमें मैं कहीं बाहर जाने योग्य नहीं। आगे आप जो आज्ञा देंगे करूँगा। आँखोंमें मेरी मोतियाबिन्द शुरू हो गया है।

अपनी तन्दुरुस्तीका क्या हाल लिखूँ। शरीर किसी तरह लस्टम पस्टम चल जाता है, पं० प्रतापनारायण मिश्रकी एक लाइन है:—

"छिन मां चटक छिनै मां अनकनि जस बुझात खन होय दिया।"

बस मैं इसीका उदाहरण हो रहा हूँ।

डिस्ट्रिक्टबोर्डके अकौंटेंट पं० चन्द्रशेखरजी मिश्रके पत्रसे मालूम

हुआ कि Supplementary Budget मंजूर हो गया। कृपापूर्वक अपने मित्रों पर ज़ोर डाल कर अब यहाँ औषधालय खुलवा दीजिए। चेयरमैन साहबसे भी मैंने प्रार्थना कर दी है।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

[१७५]

दौलतपुर, रायबरेली
१७-७-३५

श्रीमान् तिवारीजीको सादर प्रणाम,

कालीचरण सुनारके हाथ आपकी १५ मार्चकी चिट्ठी मिली।

इण्डियन प्रेसके बाबूने भूलसे पारसल रायबरेली भेज दिया। उसकी रसीद मैंने २३ फ़रवरीको आपको भेजी थी। लिफ़ाफ़ेके भीतर पारसलका महसूल ६ आना भी था। वह किसीने भाँप लिया और चिट्ठी उड़ा दी। अब मैंने उसे प्रेसको लिख दिया है कि अपना पारसल वापस मँगा लें।

आपने १॥) नाहक़ लौटाया। जिन महाशयके नाम वकालतनामा था उन्हींको दे देना था। लायसेंस बन्दूक़ पुलिससे अब तक नहीं मिला। शायद वे लोग अपने आप भेजें। ख़बर तक न देंगे। मुझमें थाने तक जानेकी शक्ति नहीं। खैर आपकी चिट्ठी लायसेन्सकी जगह रख लूँगा। ६ महीने हुए तलवार वग़ैरह ५ हथियार पुलिसमें जमा कर दिये थे। अब उनको रखनेकी मुमानियत नहीं। पुराना नोटिफिकेशन हो गया। पुलिसको लिख चुका—हथियार लौटावो, उस दिन अस्थाना साहबको भी लिखा। मगर कोई दाद नहीं देता। मालखानेके मुन्तज़िमने लिखा है—यहाँ आकर ले जाव। ये हैं इंतजामकी ख़ूबियाँ।

पं० शिवशंकर तिवारीने मुझे औषधालयकी बाबत कुछ नहीं लिखा। एक महाशय रायबरेली गये थे। वे कहते थे, पिछली मीटिंगमें कुछ नहीं हुआ। रुपयेकी मंजूरी मिल जाने पर भी किसीने रेज्योल्यूशन नहीं मूव किया कि इस रुपयेसे दौलतपुरमें दवाखाना खोला जाय। ये हैं, हमारे स्थानिक स्वराज्यकी नियामतें! भगवान् करे, यह बोर्ड फिर Supersede हो जाय। भला हो इचिसन साहबका। वह यहाँ खुद आया। दो घण्टे तक मेरे कमरेमें बैठा। शरबत-पानी किया। मेरी प्रार्थना पर मवेशीख़ाना १ हफ़्तेके अन्दर खोल दिया। कई हज़ार रुपयेकी पुख्ता इमारत मदरसेकी बनवा दी। मेरी अक्लपर पत्थर पड़े थे। कहता तो दवाख़ाना भी कबका खुल गया होता। एक ये हज़रत हमारे देशी भाई हैं जो चिट्ठीका जवाब तक नहीं देते। मवेशीख़ानेका बाड़ा लकड़ी काटोंका है। एक ऊँट उस दिन उसे तोड़कर भाग गया। बोर्डका ८०) का नुकसान हुआ। एक भैंसने कल रातको फाटक ही तोड़ डाला। मरम्मत कराओ तो छः छः महीना तक रुपया ही नही मिलता। कहाँ गई आपकी वह Majority। इन सब ऐबोंको दूर कराइए। २ वर्षसे मवेशीख़ाना है। बोर्डको मुनाफ़ा है। पिछले ११ महीनोंमें बोर्डको कई ६०) का Net-profit हुआ है। ८ रोज़ हुए मैंने चेयरमैन साहबको लिखा है कि अगले बजटमें ढाई-तीन सौ रुपयेकी मंज़ूरी माँग कर पुख्ता इमारत बनवा दें। मगर शायद ही उनके नक्कारख़ानेमें मुझ तूतीकी आवाज़ कोई सुने। मुझे मालूम हुआ है कि चेयरमैन साहब पं० जानकीशरणके लड़के हैं। आप जानते ही होंगे वे मुझसे मिलने आपके स्थान पर आया करते थे। मैं भी उनसे मिलता रहता था। पर उनके साहबज़ादे मुझपर कम कृपा करते हैं। अबके दफ़े मैंने उन्हें हिन्दीमें चिट्ठी लिखी है और शेखसादीकी इस उक्तिकी उन्हें याद दिलाई है—

"अय ज़बरदस्त ज़ेरदस्त आज़ार,
गर्म ता कै बुमानद ईं बाज़ार.
बचे कार आयदत जहाँदारी,
मुर्दनत वेह के मर्दुम आज़ारी,"

अगर वे आपके मित्र हों तो मेरी यह चिट्ठी उन्हें सुनाइए। शायद मेरे रोने-धोनेका कुछ असर उन पर हो। दवाखानेकी मंजूरी कराइए। D. C. की मंजूरीसे बहुत-सा रुपया पञ्चायतका मैं दवा खरीदनेमें खर्च कर चुका। कोई १००) अपने पाससे खर्च किया। ५, ७ बक्स दवाओंके मेरे कमरेमें हैं। देते-देते थक गया। उस दिन D-M. C. आये थे। खुद दवायें देख गये हैं।

काँजीहौसकी इमारतके बारेमें मैंने पं० चन्द्रशेखर मिश्र, Accountant, को भी लिखा है कि वही कोशिश करके अपने किसी मित्रसे एक रेज्यूल्यूशन पेश कराकर बजटमें Provision रुपयेकी करा दें।

आप धन्य हैं जो रामायणसे प्रेम करते हैं। विनय-पत्रिका भी पढ़ा कीजिए। मैं तो कूलद्रुम हो रहा हूँ। संसारमें मेरा आत्मीय कोई नहीं रहा। इस कारण निराश दशामें मैं सुबह रोज़ भगवान्‌से यह प्रार्थना करता हूँ।—

"क्षुद्र सी हमारी नाव चारों ओर है समुद्र
वायुके झकोरे उग्र रुद्र रूप धारे हैं।
शीघ्र निगल जानेको नौकाके चारों ओर
सिंधु की तरङ्गें सौ-सौ जिह्वायें पसारे हैं॥
हारे सभी भाँति हम अब तो तुम्हारे बिना
झूठे ज्ञात होते और सबके सहारे हैं।

और क्या कहें अहो डुबा दो या लगा दो पार
चाहे जो करो शरण्य शरण तुम्हारे हैं ॥"

लौकिक कार्योंके लिए मैं आपकी शरण चाहता हूँ।

शरणार्थी
म० प्र० द्विवेदी

[१७६]

दौलतपुर
४—९—३५

श्रीमान् तिवारीजीको सादर प्रणाम,

एक शिकायत सुन लीजिए, आप लोगोंके प्रयत्न करने और मेरे बहुत रोने-धोने पर बोर्डने यहाँ एक दवाखाना खोला। वैद्य जो आये, सज्जन और शिक्षित थे। उनके लिए मकान दिया, दवाखानेके लिए एक अच्छा कमरा दिया, बैठने और मरीजोंको देखनेके लिए बँगला दिया। वे बड़े आरामसे यहाँ सस्त्रीक रहने लगे। रोज गंगा-स्नान करते थे। वे ४ महीने ही रहे थे कि बिला पूर्व सूचनाके यहाँसे हटाकर रोख भेज दिये गये।

मैंने दूसरा वैद्य माँगा तो उनका तबादिला मुल्तवी कर दिया गया। मगर यह हुक्म आनेके पहले ही वे चले गये थे। अब कोई ३ हफ़्तेसे यहाँ कोई वैद्य नहीं। बेचारे मरीज दूर-दूर से आते हैं और नाउम्मेद लौट जाते हैं। चेयरमैनको लिखा तो जवाब नदारद। क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता। सुनता हूँ, खुशामद ज़रूर कामयाब होती है, वह हजम नहीं होती—

"केश पचैं, मक्खी पचैं, हालाहल पचि जाय।
जाहि खुशामद पचति है, तासों नाहिं उपाय ॥"

मगर इन लोगोंको खुशामद भी पच जाती है। औषधालयके लिए इतनी आरामकी जगहें दीं। मगर जब २) माहवार किराया माँगा तो सूखा जवाब। हालाँकि बोर्डके पास हज़ारों रुपया बचतमें दिखाया गया है। यह मुझे चेयरमैन साहबकी रिपोर्टकी उस आलोचनासे मालूम हुआ जो लीडरमें निकल चुकी है।

कृपा करके आप खुद या भाई साहबकी मारफ़त फिर एक बार चेयरमैन साहबसे कह सुन दीजिए।

दवाखाना यहाँका न तोड़ें। जो वैद्य यहाँ थे वे न भेजे जा सकें तो और ही कोई भेज दिया जाय। बोर्डके मुलाजिमोंको अगर अपने कर्तव्य-पालनकी चिन्ता नहीं, तो न सही। दया-दाक्षिण्यको तो वे धता न बतावें।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

[१७७]

दौलतपुर, रायबरेली
२६-११-३७

श्रीमान् पं० गुरुदयालजीको सादर प्रणाम,

कृपा करके, मेरे लिए, कुछ बेगार फिर कर दीजिए। बंदूकका लायसंस दिसम्बर ३७ के अन्त तक ही है। उसे अगले ३ सालके लिए फिर नया करा दीजिये। बुढ़ापेके कारण बंदूक लेकर चलनेमें मुझे कष्ट होने लगा है। हो सके तो लायसंसमें एक attendant भी दर्ज करा दीजिए। ऐसा होता है। न हो सके तो न सही।

लायसंस रजिस्टर्ड पैकेटसे अलग भेज रहा हूँ। उसीके भीतर

वकालतनामा भी है। पं० शिवगोविन्दजीको यह काम सौंप दीजिए। वे न कर सकें तो और ही किसीसे करा दीजिए।

१०) का मनिआर्डर भेज रहा हूँ। ७॥) तो तीन सालकी फ़ीस नये लैसंसकी है, २॥) ऊपरी खर्चके लिए है। और जो आज्ञा हो भेज दूँ।

आपको मैं बहुधा कष्ट देता हूँ। मुझ पर आपके अनेक एहसान हैं। कहाँ तक धन्यवाद दूँ।

कृपापात्र
महावीरप्र० द्विवेदी

[१७८]

पं० ज्वालादत्त शर्माको

जूही, कानपूर
६–११–१३

श्रीमान्,

कृपा-कार्ड मिला। दर्शन दीजिए। कृपा होगी।

आप शायद जानते ही होंगे कि मैं शहरसे ३–४ मील दूर देहातमें क्या जंगलमें रहता हूँ। पहले मैं यहाँ आरामसे था। पर कई कारणोंसे अब तकलीफ़में हूँ। यदि आप अपने हाथसे भोजन बना सकें और माफ़ कीजिए बर्तन-चौका भी कर सकें तो आप यहीं चले आइए। अन्यथा नहीं। क्योंकि यहाँ अहाते भरमें इस समय एक भी ऐसा आदमी नहीं जो चौका-बर्तन कर सकता हो। इसीसे शिष्टताके विरुद्ध मैंने यह बात साफ़-साफ़ लिख दी कि ऐसा न हो जो आपको तकलीफ़ हो।

भवदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[१७६]

दौलतपुर
भोजपुर, रायबरेली
१५-५-१४

नमोनमः,

१२ ता० का आपका कार्ड मिला। पुस्तकोंका पैकेट भी मिला।

"Truth" की समालोचना करनेकी शक्ति मुझमें नहीं। क्षमा कीजिए।

आपका लेख अवश्य छापूँगा। मूलके संस्कृत प्रमाणोंका मुक़ाबला लेखमें उद्धृत प्रमाणोंसे करके बंगला पुस्तक लौटा दूँगा।

आत्मतत्त्व-प्रकाशका अनुवाद प्रकाशित करने लायक है। ज़रूर छपाइए।

अभी कोई २ महीने यहाँ रहनेका विचार है।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

श्री बदरीनाथ भट्टको

[१८०]

दौलतपुर
२७-८-१६

प्रणाम,

महाभारतके विषयमें आपका २५ अगस्तका पत्र मिला। उसका अनुवाद बरसोंका काम है। अभी वादा करना न करनेके बराबर है।

शायद उस समय मेरा स्वास्थ्य और भी बिगड़ जाय, क्योंकि मेरी शक्ति दिनपर दिन क्षीण होती जा रही है।

बंगलासे आप अनुवाद कराइए। ३/४ हो जाने पर मुझे खबर दीजिए। उस समय तबीयत काम करने योग्य रही तो संशोधन कर दूँगा। आप एक आदमी दीजिएगा। वह बंगला पढ़ता जायगा। मैं अनुवाद देखता और उसका संशोधन करता जाऊँगा।

पुरस्कारका निश्चय अभी न कीजिए। महीने भर संशोधनका काम करके मैं सूचना दूँगा। सम्भव है, अनुवादक बेपरवाही करें। उनकी बेपरवाहीसे मेरा काम बहुत बढ़ जायगा। उनसे कह दीजिए, अनुवादका मुक़ाबला और उसमें संशोधन अच्छी तरह किया जायगा। उपाय भर कसर न करें। विशेष करके जनार्दन झाको ताकीद होनी चाहिए।

अनुवादके मैं कुछ नियम भेज दूँगा। उनकी कापी अनुवादकोंको भेज दीजिएगा। उनकी पाबन्दी होनी चाहिए।*

भवदीय
म०प्र० द्विवेदी

* यह पत्र पं० बदरीनाथ भट्ट, बी० ए० को लिखा गया था। ये पं० रामेश्वर भट्टके तृतीय पुत्र थे और उन दिनों इण्डियन प्रेसके साहित्य विभागमें, प्रयागमें, काम करते थे। द्विवेदीजीकी इच्छा इनको सरस्वतीका सम्पादक बनानेकी थी। इसीलिए द्विवेदीजीके यहाँसे सरस्वतीकी सामग्री आनेपर भट्टजी जब उसे देख लेते तब वह कम्पोज़ करनेको दी जाती थी। भट्टजी 'बालसखा'के प्रथम सम्पादक थे। इण्डियन प्रेससे अलग होने पर कई वर्ष बाद भट्टजी लखनऊ विश्वविद्यालमें हिन्दी अध्यापक हो गये। वहाँ उन्होंने मकान बनवाये, विवाह किया, सन्तानवान् हुए और युवावस्थामें ही चल बसे।

पं० कामताप्रसाद गुरुको†

[१८१]

दौलतपुर, रायबरेली
३१–७–१९१९

प्रणाम,

मैं बहुत समयसे प्रेसके लिए दो एक अच्छे आदमियोंकी खोजमें हूँ, बड़े बाबूकी आज्ञासे। एक महाशय बरेलीसे आये भी। पर चले गये। दो-एकने आना मंजूर किया, मगर आये नहीं।

आज अनायास ही एक बड़े योग्य सज्जनने प्रेसमें काम करना मंजूर किया है। ये मेरे पड़ोसी हैं और मेरे हार्दिक मित्र भी हैं। साहित्यसे निःसीम प्रेम है। डेढ़-दो सालसे इनका बहुत-सा समय मेरे ही सहवासमें बीता है। कानपुर तक जानेकी कृपा करते रहे हैं। इनका नाम है पं० देवीदत्त शुक्ल। इनकी अर्जी इसी चिट्ठीके साथ भेजता हूँ।

शुक्लजीकी उम्र कोई ३० वर्षकी है। सेण्ट्रल हिन्दू-कालेज, बनारसमें ए० फ० (एफ० ए०) तक पढ़ा है। पर फ़ेल हैं। बाहरी पुस्तकें पढ़नेमें मस्त रहनेके कारण पास नहीं हुए। संस्कृत भी साधारण जानते हैं। कुछ उर्दूका भी ज्ञान रखते हैं। हिन्दी-साहित्य और हिन्दी-लेखकोंसे खूब परिचय रखते हैं। बड़े विद्या-व्यसनी हैं। प्रतिष्ठित खानदानके हैं।

† पं० कामताप्रसाद गुरुका जन्म २४ दिसम्बर १८७५को हुआ था इनकी मृत्यु ७३ वर्षकी उम्रमें १६ नवम्बर १९४८ में हुई। हिन्दीमें व्याकरण के लिए प्रसिद्ध हैं। १९१८ ई० से १९१९ तक—एक साल—'सरस्वती' में काम किया था। उसी समयका यह पत्र है, जो पं० लल्लीप्रसादजी पांडेय के पास सुरक्षित है।

स्वभाव और वेश-भूषामें सादगीका अवतार हैं। इनके कई एक लेख 'सरस्वती'में निकल चुके हैं। दो-एकका हवाला भी लीजिए—

१. कनक-प्रकाश (समालोचना) मार्च १६१५, पृ० १६१।
२. बनाम—मुफ्त शिक्षाके शत्रु-समूह (अनुवाद) सितम्बर १६१८, पृ० १२८।
३. हिन्दीप्रचारके कुछ बाधक कारण (नया लेख, मौलिक) जुलाई १६१७, पृ० ४२।

इन्हें आप पढ़कर देखिए, कैसे हैं। ये पहले रायपुर ज़िलेमें एक अंगरेज़ी स्कूलमें असिस्टेंट मास्टर थे। अपने ऋषि-कल्प चचाके प्यारे होनेके कारण उनकी सेवा करनेके निमित्त नौकरी छोड़ आये थे। चचा परलोकवासी हो गये। इस कारण अब ये फिर कहीं बाहर जानेवाले हैं। बात-चीतसे मालूम हुआ कि यदि किसी प्रेसमें साहित्य-सम्बन्धी कोई काम मिल जाय तो सरिश्ते तालीममें जानेकी अपेक्षा यह काम ये अधिक पसन्द करेंगे। इण्डियन प्रेसकी प्रशंसा सुनकर आपके यहाँ ये बड़ी खुशीसे रहनेको कहते हैं। दिल लगाकर काम करेंगे। वक़्की पाबन्दीकी परवा न करेंगे, उसके बाद भी, ज़रूरत होनेपर काम करेंगे। प्रेसके कामको अपना समझेंगे। कोई अनिवार्य बाधा न आई तो काम कभी छोड़ेंगे नहीं। मुझे मालूम तो अभी यही होता है कि बड़े बाबू और अन्य लोग भी इनसे प्रसन्न रहेंगे। ईर्ष्याके लड़ाई-झगड़े ये जानते ही नहीं। हाँ, महीने-दो महीने इन्हें कामका ढर्रा ज़रूर बताना पड़ेगा। इन्हें वैद्य-विद्याका भी ज्ञान है। वैद्यक इनके घरकी परम्पराप्राप्त विद्या है। इस समय भी इनके दो भाई और दो भतीजे नामी वैद्य हैं।

ऐसे आदमी मुश्किलसे मिलते हैं। इन्हें आप कोई काम दीजिए। ५०) महीनेमें इनका खर्च अभी चल जायगा। अगर पांच-छः महीने काम करने पर ये सुयोग्य देख पड़ें तो छः महीने बाद ६०) कर

दीजिएगा। आगे इनका काम आप ही इनकी तरक्की करा लेगा। बड़े बाबूको यह पत्र और इनकी अर्जी सुना दीजिए और जो आज्ञा हो लिख भेजिए। मैं कानपुर जानेवाला हूँ। पर आपके उत्तरकी राह अभी ५, ६ दिन देखकर जाऊँगा। अगर मैं 'सरस्वती'का काम करने लायक हुआ तो ये मेरे सहकारी हो सकेंगे।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

श्रीमती ऊषादेवी मित्रको

[१८२]

दौलतपुर, रायबरेली
४ जून १९३३

देवीजी !

चिट्ठी मिली। उसमें यह पढ़कर कि मैं निःसहाय विधवाओंका सहायक हूँ, मैं विकल हो उठा; मेरी आखोंसे आँसू निकल पड़े।

आपकी चिट्ठीसे प्रकट है कि आप अभी हिन्दी अच्छी तरह नहीं लिख सकतीं। शायद आप वङ्गदेशीया हैं। तथापि आप एक छोटी-सी कहानी हिन्दीमें लिखकर पं० देवीदत्तजी शुक्ल सम्पादक 'सरस्वती', प्रयाग, को भेज दीजिए। उसीके साथ यह पोस्टकार्ड भी नत्थी कर दीजिए। यदि उसमें कुछ भी तत्त्व या मनोरञ्जकता होगी तो भाषाका संशोधन करके वे उसे 'सरस्वती'में छाप देंगे।*

निवेदक
म० प्र० द्विवेदी

***यह पत्र श्रीमती ऊषा मित्र (जबलपुर) को द्विवेदीजीने लिखा था, जिसे उन्होंने पं० देवीदत्त शुक्लजीके पास भेज दिया। यह पत्र भी सम्मेलन के संग्रहालयमें सुरक्षित है।**

पं० लक्ष्मीधर वाजपेयीको

[१८३]

दौलतपुर, रायबरेली
३०-१-१५

श्रीमान्,

दिसम्बर १५ में, ४०) महीनेके हिसाबसे मैं २००) दे चुकूँगा। तब मेरा देना सिर्फ़ १,१२०) रह जायगा। यदि जनवरी १६ में किसी तरह ६००) देनेसे छुटकारा हो जाय तो मैं खींच-खाँचकर इतने रुपयेका प्रबन्ध करनेकी चेष्टा करूँगा। अगले साल मुझे अपनी······भानजीकी शादी करना है। इस कारण मैं चाहता हूँ कि यदि बैंकका देना चुकता कर दिया जाय तो उस कामकी फ़िक्रमें लगूँ। मैं रिश्वत देना नहीं चाहता। बीस-पच्चीस रुपये मैं आपको खुशीसे भेज दूँगा। मैं इसीको पुण्यखाते देना समझूँगा। इतनेसे यदि काम न चल सकेगा तो दस पाँच और दे दूँगा। इस रुपये को आप चाहें जिसे दें और जिस तरह खर्च करें। आप अपने मित्रोंसे मिलकर मुझे लिखिए कि यह हो सकेगा या नहीं। यदि हाँ, तो क्या कार्रवाई करनी पड़ेगी। ड्राफ्ट जैसा वे बतावें लिख भेजिए, या जो वजूहात लिखनेकी राय दें वही बता दीजिए। बड़ी कृपा होगी। मैं झूठ बोलनेसे डरता हूँ। यह मुझे न करना पड़े, तो बहुत अच्छा हो। मैं लाहौर चला आता। मगर मेरी तन्दुरुस्ती इतनी दूर सफ़र करने योग्य नहीं। अतएव इस उपकारका भार आप ही पर छोड़ता हूँ।

"सिपुर्दम ब तो मायये खेशरा
तु दानी हिसाबे कमो बेशरा"

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजीकी मृत्युका समाचार

[१८४]

प्रेषक :—

श्री कमलाकिशोर त्रिपाठी

(द्विवेदीजीके भांजे)

बाबू हरिप्रसन्नजी घोष

मालिक—इण्डियन प्रेस,

इलाहाबाद

दौलतपुर, रायबरेली

२२–१२–३८

प्रिय बाबूजी,

अत्यन्त शोकके साथ सूचित करना पड़ रहा है कि पूज्य मामाजीका देहान्त कल सुबह ४–४५ पर रायबरेलीमें हो गया। उसी वक्त शवको कार द्वारा गाँव ले आया और दाह-संस्कार किया। मैंने क्रिया कर्म किया है। शुद्धता ३०–१२–३८ और तेरही ता० २–१–३९* सोमवार को है।

आपका

कमलाकिशोर त्रिपाठी

* मूल पत्रमें (जो कार्ड पर है) ग़लतीसे ३८ लिखा है।

—मूल पत्र श्री मुरारीलालजी केडियाके संग्रहमें सुरक्षित है।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीकी रचनाओंकी सूची

१ अतीत स्मृति
२ अद्भुत आलाप
३ अपर प्राइमर रीडर
४ अमृतलहरी
५ अवधके किसानोंकी बरबादी
६ आख्यायिका-सप्तक
७ आत्मनिवेदन (अभिनन्दनके समयका भाषण)
८ आध्यात्मिकी
९ आलोचनांजलि
१० ऋतु-तरंगिणी
११ औद्योगिकी
१२ कविता-कलाप
१३ कान्यकुब्ज-अबला-विलाप
१४ कान्यकुब्जली-व्रतम्
१५ कालिदास और उनकी कविता
१६ कालिदासकी निरंकुशता
१७ काव्य-मंजूषा
१८ किरातार्जुनीय
१९ कुमारसम्भव
२० कुमारसम्भव-सार
२१ कोविद-कीर्तन
२२ कौटिल्य-कुठार*
२३ गंगालहरी
२४ चरितचर्या
२५ चरित-चित्रण
२६ जल-चिकित्सा
२७ जिला कानपुरका भूगोल
२८ तरुणोपदेश*
२९ दृश्यदर्शन
३० देवी-स्तुति-शतक
३१ द्विवेदी-काव्यमाला
३२ नागरी
३३ नाट्यशास्त्र
३४ नैषध-चरित-चर्चा
३५ पुरातत्त्व-प्रसंग
३६ पुरावृत्त
३७ प्राचीन-चिह्न
३८ प्राचीन पण्डित और कवि
३९ बालबोध या वर्णबोध
४० बेकन-विचार-रत्नावली
४१ भामिनी-विलास

४२ भाषण (द्विवेदी मेला)
४३ भाषण (कानपुर. साहित्य-सम्मेलनके स्वागताध्यक्ष पदसे)
४४ महिम्नस्तोत्र
४५ महिला-मोद
४६ मेघदूत
४७ रघुवंश
४८ रसज्ञ-रंजन
४९ लेखांजलि
५० लोअर प्राइमरी रीडर
५१ वनिता-विलास
५२ वाग्विलास
५३ विक्रमांक देवचरित-चर्चा
५४ विज्ञ-विनोद
५५ विज्ञान-वार्ता
५६ विचार-विमर्श
५७ विदेशी-विद्वान्
५८ विनय-विनोद
५९ विहार-वाटिका
६० वेणी-संहार
६१ वैज्ञानिक-कोष
६२ वैचित्र्य-चित्रण
६३ शिक्षा
६४ शिक्षा-सरोज रीडर
६५ संकलन
६६ संपत्ति-शास्त्र
६७ समाचार-पत्र-संपादकस्तव
६८ समालोचना-समुच्चय
६९ साहित्य-संदर्भ
७० साहित्य-सीकर
७१ साहित्यालाप
७२ सुकवि-संकीर्तन
७३ सुमन
७४ सोहागरात*
७५ स्नेहमाला
७६ स्वाधीनता
७७ हिन्दी कालिदासकी समालोचना
७८ हिन्दीकी पहली किताब
७९ हिन्दी भाषाकी उत्पत्ति
८० हिन्दी महाभारत
८१ हिन्दी शिक्षावली भाग तीनकी समालोचना

---

* चिह्नांकित रचनाओंका प्रकाशन द्विवेदीजीने उचित नहीं समझा अतः ये रचनाएँ अप्रकाशित हैं।